विषय सूची

आर्हत प्रवचन

१—धर्म

धम्मो मंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो ।
देवा वि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो ॥ १ ॥

भावार्थ- धर्म सर्व श्रेष्ठ मंगल है। अहिंसा संयम और तप धर्म के स्वरूप हैं। जिस पुरुष का चित्त सदा धर्म में लगा रहता है उसे देवता भी मस्तक झुकाते हैं। दशवैकालिक दशा अ० गाथा १

धम्मो ताणं धम्मो सरणं धम्मो गई पइट्ठा य ।
धम्मेण सुचरिएण य गम्मइ अजरामरं ठाणं ॥२॥

भावार्थ – धर्म त्राण और शरण रूप है, धर्म ही गति है तथा धर्म ही आधार है। धर्म की सम्यक् आराधना करने से जीव अजरामर स्थान यानी मोक्ष प्राप्त करता है। [illegible] गाथा ३३

जरामरणवेगेणं बुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं ॥ ३ ॥

भावार्थ – जरा और मरण के प्रवाह में बहते हुए प्राणियों के

लिये धर्म ही एक मात्र द्वीप है, प्रतिष्ठा है, गति है, और उ
शरण है।   उत्तराध्ययन चौदहवाँ अध्ययन गाथा

मरिहिसि रायं! जया तया वा, मणोरमे कामगुणे विहा
इक्को हु धम्मो नरदेव ताणं, न विज्जई अन्नमिहेह किंचि

भावार्थ– हे राजन्! इन मनोरम शब्द रूप आदि कामगु
का त्याग कर एक दिन अवश्य मरना होगा। उस समय के
एक धर्म ही शरण रूप होगा। हे नरदेव! इस संसार में धर्म
सिवा आत्मा की रक्षा करने वाला कोई नहीं है।

उत्तराध्ययन चौदहवाँ अध्ययन गाथा ४०

लब्भन्ति विमला भोगा लब्भन्ति सुरसंपया
लब्भन्ति पुत्त मित्तं च एगो धम्मो न लब्भइ ॥ ५

भावार्थ – मनोरम प्रधान भोग सुलभ हैं, देवता की सम्प
पाना भी सहज है। इसी प्रकार पुत्र मित्रों का सुख भी प्राप्त हो जा
है किन्तु धर्म की प्राप्ति होना दुर्लभ है।   प्रास्ताविक

जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्मं समायरे ॥६॥

भावार्थ–जब तक बुढ़ापा नहीं सताता, जब तक व्याधियाँ नह
बढ़तीं, जब तक इन्द्रियों की शक्ति हीन नहीं होती तब तक ध
का आचरण कर लेना चाहिये।

दशवैकालिक आठवाँ अध्ययन दूसरा उद्देशा गाथा ३६

अद्धाणं जो महंतं तु सपाहेज्जो पवज्जई
गच्छंतो सो सुही होइ छुहातण्हाविवज्जिओ ॥७॥
एवं धम्मं पि काऊणं जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छंतो सो सुही होइ अप्पकम्मे अवेयणे ॥ ८ ॥

भावार्थ - जो पथिक पाथेय (भाता) साथ लेकर लम्बी यात्रा

साधु मुक्ति की लालसा वाले प्राणियों को मोक्ष योग्य अनुष्ठानों की साधना में सहायक होते हैं। इस प्रकार उक्त पाँचों पद मोक्ष प्राप्ति के हेतु रूप हैं। इसलिये मैं उक्त पंच परमेष्ठी को नमस्कार करता हूँ। विशेषावश्यक भाष्य गाथा २८४२-२८४४

अरहंत नमुक्कारो जीवं मोएइ भवसहस्साओ।
भावेण कीरमाणो होइ पुण बोहिलाभाए ॥ ४॥

भावार्थ- भाव पूर्वक किया हुआ अर्हन्नमस्कार आत्मा को अनन्त भवों से छुड़ा कर मुक्ति की प्राप्ति कराता है। यदि उसी भव में मुक्ति का लाभ न हो तो जन्मान्तर में यह नमस्कार बोधि यानी सम्यग्दर्शन का कारण होता है।

अरिहंत नमुक्कारो धन्नाण भवक्खयं कुणंताणं
हिययं अणुम्मुयंतो विसुत्तियावारओ होइ ॥ ५ ॥

भावार्थ- ज्ञानादि धन वाले तथा जीवन एवं पुनर्भव का क्षय करने वाले महात्माओं के हृदय में रहा हुआ यह अरिहन्त-नमस्कार दुर्ध्यान का निवारण कर धर्मध्यान का आलम्बन रूप होता है।

अरिहंत नमुक्कारो एवं खलु वण्णिओ महत्थुत्ति
जो मरणंमि उवग्गे अभिक्खणं कीरए बहुसो ॥ ६ ॥

भावार्थ-यह अर्हन्नमस्कार महान् अर्थ वाला कहा गया है अल्प अक्षर वाले भी इस नमस्कार पद में द्वादशांगी का अर्थ र[illegible] हुआ है। यही कारण है कि मृत्यु के समीप होने पर निरन्[illegible] इसी का बार बार स्मरण किया जाता है। बड़ी आपत्ति [illegible] पर भी द्वादशांगी के बदले इसी का स्मरण किया जाता है।

अरिहंत नमुक्कारो सव्व पावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ ७ ॥

जाता है। विश्व के सभी मंगलों में यह प्रधान मंगल है।

हरिभद्रीयावश्यक अध्ययन विभाग गाथा ६०३-६११

नोट— सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु नमस्कार का माहात्म्य बतलाने के लिये भी यही चार चार गाथाएं उक्त ग्रन्थ में दी हैं। अरिहन्त के पद के यथायोग्य सिद्ध आचार्यादि पद दिये हुए हैं।

इहलोए अत्थकामा आरोग्गं अभिरई य निप्फत्ती
सिद्धी य सग्ग सुकुल पच्चायाई य परलोए ॥ ८ ॥

भावार्थ- नमस्कार से इहलोक में अर्थ, काम, आरोग्य, अभिरति और पुण्य की प्राप्ति होती है एवं परलोक में सिद्धि, स्वर्ग एवं उत्तम कुल की प्राप्ति होती है। विशेषावश्यक भाष्य गाथा १२११

एसो पंच णमोक्कारो सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ॥ ९ ॥

भावार्थ- अरिहन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय और साधु-इन पाँचों पदों का यह नमस्कार सभी पापों का नाश करने वाला है। संसार के सब मंगलों में यह प्रथम (मुख्य) मंगल है।

आवश्यक मलयगिरि १ अध्ययन २ खंड

३—निर्ग्रन्थ प्रवचन महिमा

तमेव सच्चं णीसंकं जं जिणेहिं पवेइयं ॥ १ ॥

भावार्थ-राग द्वेष को जीतनेवाले पूर्णज्ञानी तीर्थङ्करदेव ने जो कहा है वही सत्य और असंदिग्ध है। आचारांग अ० ५ उ० ५ सूत्र १६२

इणमेव णिग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवलए संसुद्धे पडिपुण्णे णेआउए सल्लकत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे णिज्जाणमग्गे णिव्वाणमग्गे अवितहमविसंधि सव्व दुक्खप्पहीणमग्गे। इहट्ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंति ॥ २ ॥

भावार्थ-यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, सर्व प्रधान और अद्वितीय है। यह शुद्ध (निर्दोष) पूर्ण और प्रमाण से अबाधित है। मायादि शल्यों का यह नाश करने वाला है एवं सिद्धि, मुक्ति और निर्वाण का मार्ग है। यह यथार्थ एवं पूर्वापर विरोध रहित है। इस मार्ग को अंगीकार करने से सभी दुःखों का नाश हो जाता है। इसका आश्रय लेने वाले सिद्ध, बुद्ध और मुक्त होते हैं। वे निर्वाण को प्राप्त करते हैं एवं सभी दुःखों का नाश करते हैं।

हरिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन — औपपातिक सूत्र ३४

जिणवयणे अणुरत्ता जिणवयणं जे करेंति भावेणं।
अमला असंकिलिट्ठा ते होन्ति परित्तसंसारी ॥ ३ ॥

भावार्थ- जो जिनागम में अनुरक्त हैं और जो भावपूर्वक जिन भाषित अनुष्ठानों का सेवन करते हैं। राग द्वेष रूप क्लेश से रहित वे पवित्रात्मा परित्तसंसारी होते हैं।

उत्तराध्ययन अध्ययन ३६ गाथा २५८

४— आत्मा

नोइन्दियग्गिज्झ अमुत्तभावा,
अमुत्तभावा विय होइ निच्चो ॥
अज्झत्थहेउं नियपऽस्स बंधो,
संसारहेउं च वयंति बंधं ॥ १ ॥

भावार्थ-आत्मा अमूर्त होने से इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जा सकता और अमूर्त होने से ही वह नित्य है। आत्मा में रहे हुए मिथ्यात्व अज्ञान आदि दोषों से कर्मबन्ध होता है और यही बन्ध संसार परिभ्रमण का कारण कहा जाता है।

उत्तराध्ययन अध्ययन चौदहवां गाथा १९

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो य, एयं जीवस्स लक्खणं ॥ २ ॥

भावार्थ-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य तथा उपयोग ये जीव के लक्षण हैं।

उत्तराध्ययन अठाईसवां अध्ययन गाथा ११

जे आया से विन्नाया। जे विन्नाया से आया। जेण वियाणइ से आया तं पडुच पडिसंखाए। एस आयावाई समियाए परियाए वियाहिए ॥ ३ ॥

भावार्थ- जो आत्मा है वह विज्ञाता (ज्ञान वाला) है। जो विज्ञाता है वह आत्मा है। जिस ज्ञान द्वारा जानता है वह आत्मा है। ज्ञान की विशिष्ट परिणति की अपेक्षा आत्मा भी उसी (ज्ञान के) नाम से कहा जाता है। इस प्रकार ज्ञान और आत्मा की एकता जानने वाला ही आत्मवादी है और उसी की (संयमानुष्ठान) सम्यक् कही गई है।

आचारांग पाँचवां अध्ययन पाँचवां उद्देशा सूत्र १

अप्पा नई वेयरणी, अप्पा मे कूडसामली
अप्पा कामदुहा धेणु, अप्पा मे नंदणं वणं ॥४॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य, सुहाण य दुहाण य
अप्पा मित्तममित्तं च दुप्पट्ठिय सुपट्ठिओ ॥५

भावार्थ-आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूटशा वृक्ष है और यही स्वर्ग की कामदुघा धेनु और नन्दनव सदनुष्ठानरत आत्मा सुख देने वाला और दुःख दूर वाला है और दुराचार प्रवृत्त यही आत्मा दुःख देने वाला सुखों का छीनने वाला हो जाता है। सदनुष्ठानरत आत्म कारी होने से मित्र रूप है एवं दुराचार प्रवृत्त यही आत्मा कारी होने से शत्रु रूप है। इस प्रकार आत्मा ही सुख दुः देने वाला और यही मित्र और शत्रु रूप है।

उत्तराध्ययन बीसवां अध्ययन गाथा ३६-

पुरिसा! तुममेव तुमं मित्तं किं बहिया मित्तमिच्छसि

भावार्थ- जिन जीवों ने सिर्फ अन्तर्मुहूर्त के लिये भी सम्यक्त्व का स्पर्श किया है उन जीवों का अर्द्धपुद्गलपरावर्तन से हृस्व कम संसारपरिभ्रमण ही शेष रह जाता है।

धर्मसंग्रह दूसरा अधिकार श्लोक २१ टीका

संबुज्झह किं न बुज्झह संबोही खलु पेच दुल्लहा ।
णो हूवणमंति राइओ नो सुलभं पुणरवि जीवियं ॥४॥

भावार्थ- समझो, क्यों नहीं समझते ? परलोक में सम्यक् बोधि का प्राप्त होना अति कठिन है। बीती हुई रात्रियाँ कभी लौट कर नहीं आतीं। मनुष्य जीवन का दुबारा पाना भी सहज नहीं है।

सूयगडांग दूसरा अ० पहला उ० गाथा १

न वि तं करेइ अग्गी नेव विसं किण्हसप्पो य ।
जं कुणइ महादोसं तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥ ५ ॥

भावार्थ तीव्र मिथ्यात्व आत्मा का जितना अहित एवं बिगाड़ करता है उतना बिगाड़ अग्नि, विष और काला नाग भी नहीं करते।

भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक गाथा ६१

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं ॥६॥

भावार्थ-सम्यक्त्व विहीन पुरुष को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र गुण प्रगट नहीं होते। गुण-रहित पुरुष का मोक्ष-सभी कर्मों का क्षय-नहीं होता एवं कर्म क्षय किये बिना सिद्धिपद की प्राप्ति नहीं होती।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा ३०

समियं ति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा समिया होइ उवेहाए ॥ ७ ॥

भावार्थ-सम्यक्त्व धारी आत्मा की भावना सम्यक् होती है इसलिये उसे सम्यक् अथवा असम्यक् कोई भी बात सम्यक् रूप

भावार्थ- हे पुरुष ! सदनुष्ठान करने वाला यह तेरा आत्मा ही तेरा मित्र है फिर मित्र की बाहर क्या खोज करता है ?

आचारांग तीसरा अध्ययन तीसरा उ० सूत्र ११८

न तं अरी कंठछेत्ता करेइ जं से करे अप्पणिया दुरप्पया।
से नाहिइ मच्चुमुहं तु पत्ते पच्छाणुतावेण दयाविहूणो॥

भावार्थ-सिर काटने वाला शत्रु भी उतना अपकार नहीं करता जितना कि दुराचार में लगा हुआ अपना आत्मा करता है। दया शून्य दुराचारी पहले कुछ विचार नहीं करता किन्तु जब वह अपने को मृत्यु के मुख में पाता है तो अपने दुराचरणों को याद कर कर पछताता है। उत्तराध्ययन बीसवाँ अध्ययन गाथा ४८

५— सम्यग्दर्शन

अरिहंतो महदेवो जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो
जिणपण्णत्तं तत्तं इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥ १ ॥

भावार्थ- जीवन पर्यन्त अरिहंत भगवान् मेरे देव हैं, पंच महाव्रतधारी सुसाधु मेरे गुरु हैं एवं वीतराग प्ररूपित तत्त्व ही धर्म है। इस प्रकार मैंने सम्यक्त्व धारण किया है। आवश्यक सू

परमत्थसंथवो वा सुदिट्ठपरमत्थसेवणा वावि
वावण्ण कुदंसण वज्जणा य सम्मत्त सद्दहणा ॥ २

भावार्थ-परमार्थ यानी जीवादि तत्त्वों का ज्ञान प्राप्त कर उनका मनन करना, परमार्थ का यथार्थ स्वरूप जानने वाले महात्माओं की सेवा भक्ति करना, सम्यक्त्व से गिरे हुए पुरुषों की एवं कुदर्शनियों की संगति न करना यही सम्यक्त्व का श्रद्धान है।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा २८

कत्तोसुहुत्तमित्तं पि फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं
तेसिं अवड्ढपुग्गल परियट्टो चेव संसारो ॥ ३ ॥

भावार्थ- जिन जीवों ने सिर्फ अन्तर्मुहूर्त के लिये भी सम्यक्त्व का स्पर्श किया है उन जीवों का अर्द्धपुद्गलपरावर्तन से कुछ कम संसारपरिभ्रमण ही शेष रह जाता है।

धर्मसंग्रह दूसरा अधिकार श्लोक २१ टीका।

संबुज्झह किं न बुज्झह संबोही खलु पेच्च दुल्लहा ।
णो हूवणमंति राइओ नो सुलभं पुणरवि जीवियं ॥४॥

भावार्थ- समझो, क्यों नहीं समझते ? परलोक में सम्यक् बोधि का प्राप्त होना अति कठिन है। बीती हुई रात्रियाँ कभी लौट कर नहीं आतीं। मनुष्यजीवन का दुबारा पाना भी सहज नहीं है।

सूत्रकृतांग दूसरा अ० पहला उ० गाथा १

न वि तं करेइ अग्गी नेअ विसं किण्हसप्पो अ ।
जं कुणइ महादोसं तिव्वं जीवस्स मिच्छत्तं ॥ ५ ॥

भावार्थ तीव्र मिथ्यात्व आत्मा का जितना अहित एवं बिगाड़ करता है उतना बिगाड़ अग्नि, विष और काला नाग भी नहीं करते।

[illegible]

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा ।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो नत्थि अमुक्कस्स निव्वाणं ॥६॥

भावार्थ-सम्यक्त्व विहीन पुरुष को सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती और सम्यग्ज्ञान बिना चारित्र गुण प्रगट नहीं होते। गुण रहित पुरुष का मोक्ष-सभी कर्मों का क्षय-नहीं होता एवं कर्म क्षय किये बिना सिद्धिपद की प्राप्ति नहीं होती।

उत्तराध्ययन अध्ययन २८ गाथा ३०

समियं ति मन्नमाणस्स समिया वा असमिया वा
समिया होइ उवेहाए ॥ ७ ॥

भावार्थ-सम्यक्त्व धारी आत्मा की भावना सम्यक् होती है इसलिये उसे सम्यक् अथवा असम्यक् कोई भी बात सम्यक् रूप

से ही परिणत होती है। आचारांग पांचवां अध्ययन पांचवां उ० सू० ११

दंसणभट्ठो भट्ठो न हु भट्ठो होइ चरणपब्भट्ठो।
दंसणमणुपत्तस्स हु परिअडणं नत्थि संसारे ॥८॥

भावार्थ – चारित्रभ्रष्ट आत्मा भ्रष्ट नहीं है किन्तु दर्शनभ्रष्ट (श्रद्धा से गिरा हुआ) आत्मा ही वास्तव में भ्रष्ट है। सम्यग्दर्शन वाला जीव संसार में परिभ्रमण नहीं करता।

दंसणभट्ठो भट्ठो दंसणभट्ठस्स नत्थि निव्वाणं।
सिज्झंति चरणरहिआ दंसणरहिआ न सिज्झंति॥ ६॥

भावार्थ – सम्यग्दर्शन से गिरे हुए आत्मा का सर्वगुण ही नष्ट समझना चाहिये। ऐसे व्यक्ति को निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती। चारित्र (द्रव्यचारित्र) रहित व्यक्ति सिद्ध हो जाते हैं किन्तु सम्यग्दर्शन रहित व्यक्ति का सिद्धि प्राप्त करना संभव ही नहीं है।

[illegible] गाथा ६०, ६१

जं सक्कइ तं कीरइ जं च न सक्कइ तयंमि सद्दहणा।
सद्दहमाणो जीवो वच्चइ अयरामरं ठाणं ॥१०॥

भावार्थ – जिसका आचरण हो सके उसका आचरण करना चाहिये और जिसका आचरण न हो सके उस पर श्रद्धा रखनी चाहिये। श्रद्धा रखता हुआ जीव अजर अमर स्थान (मुक्ति) को प्राप्त होता है। [illegible]

६—सम्यग्ज्ञान

पढमं नाणं तओ दया, एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेय पावगं ॥१॥

[illegible]

और उसकी प्राप्ति के साधनों का ज्ञान नहीं है, क्या कर सकता है, वह अपने कल्याण और अकल्याण को भी कैसे समझ सकता है?

सोच्चा जाणइ कल्लाणं, सोच्चा जाणइ पावगं ।
उभयं पि जाणई सोच्चा जं सेयं तं समायरे ॥ २ ॥

भावार्थ– यह आत्मा सुन कर कल्याण का मार्ग जानता है और सुन कर ही पाप का मार्ग जानता है। दोनों मार्ग सुन कर ही जाने जाते हैं। साधक का कर्तव्य है कि दोनों मार्गों का श्रवण करे और जो श्रेयस्कर प्रतीत हो उसका आचरण करे।

जो जीवे वि न याणेइ अजीवे वि न याणइ ।
जीवाजीवे अयाणंतो कहं सो नाहीइ संजमं ॥३॥
जो जीवे वि वियाणेइ अजीवे वि वियाणइ ।
जीवाजीवे वियाणंतो सो हु नाहीइ संजमं ॥ ४ ॥

भावार्थ–जो न जीव का स्वरूप जानता है और न अजीव का स्वरूप जानता है। दोनों–जीव अजीव–के स्वरूप को न जानने वाला साधक संयम को कैसे जान सकेगा।

जो जीव का स्वरूप जानता है, अजीव का स्वरूप जानता है। जीव और अजीव दोनों का स्वरूप जानने वाला संयम का स्वरूप भी जान सकेगा। दशवैकालिक चौथा अ० गाथा १० से ११

सुई जहा ससुत्ता न नस्सइ कयवरम्मि पडिया वि ।
जीवोऽवि तह ससुत्तो न नस्सइ गओ वि संसारे ॥५॥

भावार्थ– जैसे धागा पिरोई हुई सुई कचरे में पड़ जाने पर भी गुम नहीं होती इसी प्रकार श्रुतज्ञान वाला आत्मा संसार में रहकर भी आत्मस्वरूप को नहीं गँवाता। भक्त परिज्ञा प्रकीर्णक गाथा ८६

जहा खरो चंदण भारवाही, भारस्स भागी ण हु चंदणस्स।
एवं खु णाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी ण हु सुग्गईए॥

भावार्थ– जैसे चन्दन का भार ढोने वाला गधा केवल भार ही का भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिलती। इसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञानी का ज्ञान केवल भार रूप है। वह सुगति का अधिकारी नहीं होता।

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ॥ ४॥

भावार्थ– क्रिया शून्य ज्ञान निष्फल है। अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया भी फलवती नहीं होती। आग लग जाने पर पङ्गु पुरुष का देखना उसे आग से नहीं बचा सकता और न अंधे पुरुष का दौड़ना ही उसे निरापद स्थान पर पहुँचा सकता है। किन्तु निरपेक्ष ज्ञान क्रिया वाले दोनों ही आग में जल जाते हैं।

विशेषावश्यक भाष्य गाथा ११५२,११५८,११५९

८— व्यवहार निश्चय

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥ १॥

भावार्थ यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के बिना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय बिना तत्त्व ही का नाश हो जाता है। समयसार वृत्ति, आगमसार

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
ववहार उच्छेए, तित्थुच्छेओ हवइऽवस्सं॥ २॥

भावार्थ–यदि जिनमत को मानते हो तो व्यवहार और निश्चय

जं अन्नाणी कम्मं खवेइ, बहुआहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥६॥

भावार्थ-अज्ञानात्मा अनेक कोटि वर्षों में जिन कर्मों का क्षय करता है। मन वचन काया का गोपन करने वाला ज्ञानी उन्हीं कर्मों को केवल एक श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल में क्षय कर देता है।

महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक गाथा १०१

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए ॥ ७ ॥

भावार्थ- जितने भी अज्ञानी पुरुष हैं वे सभी दुःखभागी हैं। भले बुरे के विवेक से शून्य वे अज्ञानी पुरुष इस अनन्त संसार में अनेक बार दरिद्रतादि दुःखों से पीड़ित होते हैं।

उत्तराध्ययन अध्ययन ६ गाथा १

७—क्रिया रहित ज्ञान

एवं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समयं चेव, एयावन्तं वियाणिया ॥ १ ॥

भावार्थ-- ज्ञानी के ज्ञान सीखने का यही सार है कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करे। 'अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है' इतना ही विज्ञान है।

सूयगडांग पहला अध्ययन चौथा उद्देशा गाथा १०

सुबहुं पि सुयमहीयं, किं काही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि ॥२॥

भावार्थ-चारित्र रहित पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है? क्या लाखों दीपक का जलाना भी कहीं अन्धे को देखने में सहायक हो सकता है?

जहा खरो चंदण भारवाही, भारस्स भागी ण हु चंदणस्स।
एवं खु णाणी चरणेण हीणो, भारस्स भागी ण हु सुग्गईए॥

भावार्थ– जैसे चन्दन का भार ढोने वाला गधा केवल भार ही का भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिलती। इसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञानी का ज्ञान केवल भार रूप है। वह सुगति का अधिकारी नहीं होता।

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ॥ ४॥

भावार्थ– क्रिया शून्य ज्ञान निष्फल है। अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया भी फलवती नहीं होती। आग लग जाने पर पङ्गु पुरुष का देखना उसे आग से नहीं बचा सकता और न अंधे पुरुष का दौड़ना ही उसे निरापद स्थान पर पहुँचा सकता है। किन्तु निरपेक्ष ज्ञान क्रिया वाले दोनों ही आग में जल जाते हैं।

विशेषावश्यक भाष्य गाथा ११५३, ११५८, ११५९

८— व्यवहार निश्चय

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जई, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥ १॥

भावार्थ यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के विना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय विना तत्त्व ही का नाश हो जाता है। ववहार वृत्ति, भगवती

जइ जिणमयं पवज्जह, ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
ववहार उच्छेए, तित्थुच्छेओ हवइऽवस्सं॥ २॥

भावार्थ–यदि जिनमत को मानते हो तो व्यवहार और निश्चय

जं अन्नाणी कम्मं खवेइ, बहुआहिं वासकोडीहिं ।
तं नाणी तिहिं गुत्तो, खवेइ ऊसासमित्तेणं ॥६॥

भावार्थ-अज्ञानात्मा अनेक कोटि वर्षों में जिन कर्मों का क्षय करता है। मन वचन काया का गोपन करने वाला ज्ञानी उन्हीं कर्मों को केवल एक श्वासोच्छ्वास प्रमाण काल में क्षय कर देता है।

महाप्रत्याख्यान प्रकीर्णक गाथा १०१

जावंतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्खसंभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए ॥ ७ ॥

भावार्थ- जितने भी अज्ञानी पुरुष हैं वे सभी दुःखभागी हैं। भले बुरे के विवेक से शून्य वे अज्ञानी पुरुष इस अनन्त संसार में अनेक बार दरिद्रतादि दुःखों से पीड़ित होते हैं।

उत्तराध्ययन अध्ययन ६ गाथा १

७—क्रिया रहित ज्ञान

एयं खु णाणिणो सारं, जं न हिंसइ किंचण ।
अहिंसा समयं चेव, एयावन्तं वियाणिया ॥ १ ॥

भावार्थ-- ज्ञानी के ज्ञान सीखने का यही सार है कि वह किसी प्राणी की हिंसा न करे। 'अहिंसा का सिद्धान्त ही सर्वोपरि है' इतना ही विज्ञान है।

सुयगडांग पहला अध्ययन चौथा उद्देशा गाथा १०

सुबहुं पि सुयमहीयं, किं काही चरणविप्पहीणस्स ।
अंधस्स जह पलित्ता, दीवसयसहस्सकोडी वि ॥२॥

भावार्थ-चारित्र रहित पुरुष को बहुत से शास्त्रों का अध्ययन भी क्या लाभ दे सकता है? क्या लाखों दीपक का जलाना भी कहीं अन्धे को देखने में सहायक हो सकता है?

जहा खरो चंदण भारवाही,भारस्स भागी ण हु चंदणस्स।
एवं खु णाणी चरणेण हीणो,भारस्स भागी ण हु सुग्गईए॥

भावार्थ- जैसे चन्दन का भार ढोने वाला गधा केवल भार ही का भागी है। चन्दन की शीतलता उसे नहीं मिलती। इसी प्रकार चारित्र रहित ज्ञानी का ज्ञान केवल भार रूप है। वह सुगति का अधिकारी नहीं होता।

हयं नाणं कियाहीणं, हया अन्नाणओ किया।
पासंतो पंगुलो दड्ढो, धावमाणो य अंधओ॥ ४॥

भावार्थ- क्रिया शून्य ज्ञान निष्फल है। अज्ञानपूर्वक की गई क्रिया भी फलवती नहीं होती। आग लग जाने पर पङ्गु पुरुष का देखना उसे आग से नहीं बचा सकता और न अंधे पुरुष का दौड़ना ही उसे निरापद स्थान पर पहुँचा सकता है। किन्तु निरपेक्ष ज्ञान किया वाले दोनों ही आग में जल जाते हैं।

विशेषावश्यक भाष्य गाथा ११५९,११६०,११६८

८—— व्यवहार निश्चय

जइ जिणमयं पवज्जह,ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
एकेण विणा छिज्जइ, तित्थं अण्णेण उण तच्चं॥ १॥

भावार्थ यदि तुम जिनमत स्वीकार करना चाहते हो तो व्यवहार और निश्चय दोनों में से एक का भी त्याग न करो। व्यवहार के बिना तीर्थ एवं आचार का उच्छेद हो जाता है और निश्चय बिना तत्त्व ही का नाश हो जाता है। समयसार वृत्ति, आत्मसार

जइ जिणमयं पवज्जह,ता मा ववहार णिच्छए मुयह।
ववहार उच्छेए, तित्थुच्छेओ हवइऽवस्सं॥ २॥

भावार्थ-यदि जिनमत को मानते हो तो व्यवहार और निश्चय

दोनों में से एक को भी न छोड़ो। व्यवहार का उच्छेद होने से अवश्य ही तीर्थ का नाश होता है। पंचवस्तुक

६— मोक्षमार्ग

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा।
एयं मग्गमणुप्पत्ता, जीवा गच्छंति सुग्गइं ॥ १॥

भावार्थ- सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यक् चारित्र और तप ये चारों मोक्षमार्ग यानी मोक्ष के उपाय हैं। मोक्ष के इस मार्ग की आराधना कर जीव सुगति प्राप्त करते हैं।

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे
चारित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ ॥ २॥

भावार्थ-सम्यग्ज्ञान द्वारा आत्मा जीवादि पदार्थों को जानता और सम्यग्दर्शन द्वारा उन पर श्रद्धा करता है। चारित्र द्वारा आत्मा नवीन कर्म आने से रोकता है एवं तप द्वारा पुराने कर्मों का नाश कर शुद्ध होता है। उत्तराध्ययन अ० २८ गाथा ३,३५

जया जीवमजीवे य, दोवि एए वियाणइ
तया गई बहुविहं, सव्वजीवाण जाणइ ॥ ३

भावार्थ-जब आत्मा जीव और अजीव दोनों को भलीभाँति जान लेता है तब वह सब जीवों की नानाविध नरक तिर्यञ्च आदि गतियों को जान लेता है।

जया गई बहुविहं, सव्व जीवाण जाणइ
तया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ ॥ ४

भावार्थ- जब वह सब जीवों की नानाविध गतियों को जान लेता है तब पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष को भी जान लेता

जया पुण्णं च पावं च, बंधं मोक्खं च जाणइ ।
तया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ॥ ५ ॥

भावार्थ- जब पुण्य,पाप,बन्ध और मोक्ष को जान लेता है तब देवता और मनुष्य सम्बन्धी समस्त कामभोगों को असार जान कर उनसे विरक्त हो जाता है।

जया निव्विंदए भोए, जे दिव्वे जे य माणुसे ।
तया चयइ संजोगं, सब्भिंतर बाहिरं ॥ ६ ॥

भावार्थ- जब देवता और मनुष्य सम्बन्धी समस्त कामभोगों से विरक्त हो जाता है तब माता पिता तथा संपत्ति रूप बाह्य संयोग एवं रागद्वेष कषाय रूप आभ्यन्तर संयोग को छोड़ देता है।

जया चयइ संजोगं, सब्भिंतर बाहिरं ।
तया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं ॥ ७ ॥

भावार्थ जब उक्त बाह्य एवं आभ्यन्तर संयोग को छोड़ देता है तब मुण्डित होकर अनगारवृत्ति(मुनिचर्या) को प्राप्त करता है।

जया मुण्डे भवित्ताणं, पव्वयइ अणगारियं ।
तया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ॥ ८ ॥

भावार्थ- जब मुण्डित होकर अनगार वृत्ति को प्राप्त करता है तब सर्व प्राणातिपातादिविरतिरूप उत्कृष्ट संवर-चारित्र धर्म का यथावत् पालन करता है।

जया संवरमुक्किट्ठं, धम्मं फासे अणुत्तरं ।
तया धुणइ कम्मरयं, अबोहि कलुसं कडं ॥ ९ ॥

भावार्थ- जब सर्व प्राणातिपातादि विरतिरूप उत्कृष्ट संवर चारित्र धर्म को प्राप्त करता है तब मिथ्यात्व रूप कलुष परिणाम से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म रज को झाड़ देता है।

जया धुणइ कम्मरयं, अबोहि कलुसं कडं ।
तया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ॥१०॥

भावार्थ-जब आत्मा मिथ्यात्व रूप कलुष परिणाम से आत्मा के साथ लगे हुए कर्म रज को झाड़ देता है तब वह अशेष वस्तुओं को विषय करने वाले केवलज्ञान केवलदर्शन प्राप्त करता है।

जया सव्वत्तगं नाणं, दंसणं चाभिगच्छइ ।
तया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ॥ ११ ॥

भावार्थ-जब अशेष वस्तुओं को विषय करने वाले केवलज्ञान और केवलदर्शन की प्राप्ति हो जाती है तब आत्मा जिन तथा केवली होकर लोक और अलोक को जान लेता है।

जया लोगमलोगं च, जिणो जाणइ केवली ।
तया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ॥ १२ ॥

भावार्थ- जब केवलज्ञानी जिन लोक और अलोक को जान लेता है तब स्थिति पूरी होने पर मन वचन काया रूप योगों का निरोध कर शैलेशी अवस्था को प्राप्त होता है।

जया जोगे निरुंभित्ता, सेलेसिं पडिवज्जइ ।
तया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ॥१३॥

भावार्थ- जब मन वचन काया रूप योगों का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था को प्राप्त करता है तब वह अशेष कर्मों का क्षय कर सर्वथा कर्मरहित होकर सिद्धि गति को प्राप्त करता है।

जया कम्मं खवित्ताणं, सिद्धिं गच्छइ नीरओ ।
तया लोगमत्थयत्थो, सिद्धो हवइ सासओ ॥१४॥

भावार्थ- जब आत्मा सभी कर्मों का क्षय कर, कर्मरहित होकर सिद्धि गति को प्राप्त कर लेता है तब वह लोक के मस्तक

सिद्धिगति में रहने वाला शाश्वत सिद्ध हो जाता है।

दशवैकालिक चौथा अध्ययन गाथा १४ से १५

सवणे णाणे य विणाणे, पचक्खाणे य संजमे ।
अणण्हये तवं चेव, वोदाणे अकिरिय सिद्धि ॥१५॥

भावार्थ- साधु महात्माओं की उपासना (सेवा भक्ति) का फल सत् शास्त्रों का श्रवण है। श्रवण का फल ज्ञान है और ज्ञान का फल विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति होती है। विशिष्ट ज्ञान होने से आत्मा प्रत्याख्यान करता है और प्रत्याख्यान करने से संयम का पालन होता है। संयम का पालन करने से नवीन कर्मों का प्रवाह आना रुक जाता है। नवीन कर्म रहित व्यक्ति लघुकर्मी होने से तप का आचरण करता है और तप द्वारा पुरातन कर्म क्षय कर देता है। कर्मों के क्षय हो जाने से यह योगों का निरोध कर क्रिया रहित होता है एवं अन्तिम सिद्धि गति रूप फल प्राप्त करता है।

भगवती दूसरा शतक पाँचवां उद्देशा

१०—अहिंसा—दया

सव्वे जीवा वि इच्छंति, जीविउं न मरिज्जिउं ।
तम्हा पाणवहं घोरं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥ १ ॥

भावार्थ- सभी जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई भी नहीं चाहता। इसीलिये निर्ग्रन्थ जैन मुनि महाभयावह प्राणीवध का सर्वथा त्याग करते हैं। दशवैकालिक अ० ६ गाथा १०

सव्वे पाणा पियाउया, सुहसाया, दुक्खपडिकूला, अप्पियवहा, पियजीविणो, जीविउकामा, सव्वेसिं जीवियं पियं ॥ २ ॥

भावार्थ- सभी जीवों को अपनी आयु प्रिय है, वे सुख चाहते

हैं और दुःख से द्वेष करते हैं। उन्हें वध अप्रिय लगता है औ
जीवन प्रिय लगता है अतएव वे दीर्घ आयु चाहते हैं। सभी
अपना जीवन प्रिय है। आचारांग अ० २ उ० ३ सूत्र ८१

सव्वे अक्कन्तदुक्खा य, अओ सव्वे अहिंसिया ॥३

भावार्थ- सभी प्राणियों को दुःख अप्रिय लगता है अत
किसी भी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिये।

सुयगडांग अध्ययन १ उद्देशा ४ गाथा ६

से बेमि जे अईया जे पडुप्पन्ना जे य आगमिस्
अरहंता भगवंतो ते सव्वे एवमाइक्खन्ति एवं भास
एवं पण्णविंति एवं परूवेंति- सव्वे पाणा सव्वे भूया स
जीवा सव्वे सत्ता न हंतव्वा न अज्जावेयव्वा न
घेत्तव्वा न परियावेयव्वा न उद्दवेयव्वा।

एस धम्मे धुवे णिइए सासए समिच्च लोयं खेय
पवेइए ॥ ४ ॥

भावार्थ- मैं (महावीर) कहता हूँ कि भूतकाल में जो ती
हुए हैं, वर्तमान काल में जो तीर्थङ्कर हैं एवं भविष्य में जो
ङ्कर होंगे उन सभी ने यह कहा है, कहते हैं और कहेंगे कि
प्राण, भूत, जीव और सत्त्व का हनन न करना चाहिये, उ
अनुशासन न करना चाहिये, उन्हें ग्रहण (अधीन) न करना चा
परिताप न देना चाहिये तथा प्राणों से वियुक्त न करना चा

यह धर्म ध्रुव, नित्य और शाश्वत है। लोक के स्वरूप को
कर तीर्थङ्कर भगवान ने इस धर्म का उपदेश दिया है।

आचारांग [illegible] अध्ययन ४ उद्देशा १ सूत्र १२

इमं च णं सव्वजीवरक्खणदयट्ठाए पावयणं भग
सुकहियं अत्तहियं पेच्चाभावियं आगमेसिभद्दं सुद्धं

इयं अणुहिलं अणुत्तरं सव्वदुक्खपावाण विउसमणं॥५

भावार्थ- विश्व के सभी जीवों की रक्षा रूप दया के लिये भगवान् महावीर ने यह प्रवचन कहा है। यह आत्मा के लिये हितकारी एवं परलोक में शुभ फल देने वाला है। इसकी आराधना से भविष्य में कल्याण की प्राप्ति होती है। यह प्रवचन निर्दोष न्यायसंगत सरल एवं प्रधान है तथा सभी दुःख एवं पापों का शमन करने वाला है।

प्रश्नव्याकरण पहला संवर द्वार सूत्र ११

तत्थिमं पढमं ठाणं, महावीरेण देसिअं ।
अहिंसा निउणा दिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो ॥६॥

भावार्थ- भगवान् महावीर ने अठारह धर्म स्थानों में सबसे पहला स्थान अहिंसा का बतलाया है। यह अहिंसा अत्यन्त सूक्ष्म है एवं इसी में भगवान् ने धर्म साधना का साक्षात्कार किया है। सर्व प्राणी विषयक संयम ही अहिंसा का स्वरूप है।

दशवैकालिक छठा अध्ययन गाथा ८

जह ते न पिअं दुक्खं, जाणिअ एमेव सव्व जीवाणं ।
सव्वायर मुवउत्तो, अत्तोवम्मेण कुणसु दयं ॥ ७ ॥

भावार्थ-जिस प्रकार तुम्हें दुःख अप्रिय लगता है उसी प्रकार संसार के सभी जीवों को भी दुःख अप्रिय लगता है। ऐसा जान कर आत्मा की उपमा से सभी प्राणियों पर आदर एवं उपयोग साथ दया करो।

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक गाथा ९०

तुमं सि नाम सच्चेव जं हंतव्वं ति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं अज्जावेयव्वं ति मन्नसि, तुमंसि नाम सच्चेव जं परियावेयव्वं ति मन्नसि, तुमं सि नाम सच्चेव जं परिघेत्तव्वं ति मन्नसि एवं तुमं सि नाम सच्चेव जं उद्दवेयव्वं ति मन्नसि ॥ ८॥

भावार्थ–जब तुम किसी को हनन, आज्ञापन, परिताप, परिग्रह एवं विनाश योग्य समझते हो तो यह विचार करो कि वह तुम ही हो। उसकी आत्मा और तुम्हारी आत्मा एक ही है। जैसे तुम्हें हननादि अप्रिय हैं और तुम उनसे बचना चाहते हो उसी प्रकार उसकी आत्मा को भी समझो।

आचारांग पाँचवाँ लोकसाराध्ययन उ० ५ सूत्र १६५

एस खलु गंथे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णिरए ॥ ९ ॥

भावार्थ– यह जीवहिंसा ही ग्रन्थ (आठ कर्मों का बन्ध) है, यही मोह है, यही मृत्यु है और यही नरक है।

आचारांग पहला अध्ययन दूसरा उद्देशा सूत्र १७

सयं तिवायए पाणे, अदुवाऽन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाऽणुजाणाइ, वेरं वड्ढइ अप्पणो ॥ १० ॥

भावार्थ– जो पुरुष स्वयं प्राणियों की हिंसा करता है, दूसरे से हिंसा करवाता है और हिंसा करने वाले का अनुमोदन करता है वह अपने लिये वैर बढ़ाता है। सूयगडांग अ० १ उ० १ गाथा ३

जइ मज्झ कारणा एए, हम्मन्ति सुबहू जीया।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सइ ॥ ११ ॥

भावार्थ– यदि मेरे निमित्त ये जीव मारे जाते हों तो यह बात परलोक में मेरे लिये कल्याणकारी न होगी।

उत्तराध्ययन बाईसवाँ अध्ययन गाथा १६

अभओ पत्थिवा! तुज्झं, अभयदाया भवाहि य।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं हिंसाए पसज्जसि ॥१२॥

भावार्थ– हे राजन्! तुम्हें अभय है और तुम भी अभयदान देने वाले होओ। इस अनाश्वत जीव लोक में तुम हिंसा में क्यों आसक्त हो रहे हो? उत्तराध्ययन अठारहवाँ अ० गाथा ११

समया सव्वभूएसुं, सत्तुमित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवाय विरई, जावज्जीवाए दुक्करं ॥ १३ ॥

भावार्थ- जीवन पर्यन्त संसार के सभी प्राणियों पर-फिर भले ही वह शत्रु हो या मित्र-समभाव रखना तथा सभी प्रकार की हिंसा का त्याग करना बड़ा ही दुष्कर है।

उत्तराध्ययन उन्नीसवां अध्ययन गाथा २५

जीव वहो अप्पवहो, जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्व जीव हिंसा, परिचत्ता अत्तकामेहिं ॥१४॥

भावार्थ- जीव की हिंसा करना आत्मा की हिंसा करना है और जीवों पर दया करना आत्मा पर दया करना है। इसीलिये आत्मार्थी महापुरुषों ने सर्वथा हिंसा का त्याग किया है।

जावइयाइं दुक्खाइं, हुंति चउगइगयस्स जीवस्स ।
सव्वाइं ताइं हिंसा,फलाइं निउणं वियाणाहि ॥१५॥

भावार्थ-यह सुनिश्चित समझो कि चार गति में रहे हुए जीवों को जितने भी दुःख भोगने पड़ते हैं वे सभी हिंसा के फल हैं।

जं किंचि सुहमुयारं, पहुत्तणं पयइसुंदरं जं च ।
आरुग्गं सोहग्गं, तं तमहिंसाफलं सव्वं ॥ १६ ॥

भावार्थ- संसार में जो कुछ भी उदार सुख, प्रभुत्व, प्रकृति में सुन्दरता, आरोग्य एवं सौभाग्य दिखाई देते हैं, वे सभी अहिंसा के फल हैं।

[illegible]

तुंगं न मंदराओ, आगासाओ विसालयं नत्थि ।
जह तह जयंमि जाणसु, धम्ममहिंसा समं नत्थि ॥१७॥

भावार्थ- जैसे जगत् में सुमेरु [illegible] से ऊँचा एवं आकाश [illegible] विशाल कोई नहीं है [illegible]

अखिल विश्व में अहिंसा जैसा दूसरा धर्म नहीं है।

भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक गाथा ६१

११—सत्य

सच्चं जसस्स मूलं, सच्चं विस्सासकारणं परमं।
सच्चं सग्गद्दारं, सच्चं सिद्धीइ सोपाणं ॥ १ ॥

भावार्थ– सत्य यश का मूल कारण है। सत्य ही विश्वास-प्राप्ति का मुख्य साधन है। सत्य स्वर्ग का द्वार है एवं सिद्धि का सोपान है। धर्मसंग्रह दूसरा अधिकार श्लोक २६ टीका

तं लोगम्मि सारभूयं, गंभीरतरं महासमुद्दाओ, थिरतरगं मेरुपव्वयाओ, सोमतरगं चंदमंडलाओ, दित्ततरं सूरमंडलाओ, विमलतरं सरयनहयलाओ, सुरभितरं गंधमादणाओ ॥ २ ॥

भावार्थ– सत्य लोक में सारभूत है। यह महासमुद्र से भी अधिक गम्भीर है। सुमेरु पर्वत से भी अधिक स्थिर है। चंद्र-मंडल से अधिक सौम्य एवं सूर्यमंडल से अधिक दीप्त है। शरत्कालीन आकाश से यह अधिक निर्मल है एवं गन्धमादन पर्वत से भी अधिक सुगन्ध वाला है। प्रश्नव्याकरण दूसरा संवर द्वार सूत्र २४

जे वि य लोगम्मि अपरिसेसा मंतजोगा जवा य विज्जा य जंभका य अत्थाणि य सिक्खाओ य आगमा य सव्वाणि वि ताइं सच्चे पइट्ठियाइं ॥ ३ ॥

भावार्थ–लोक में जो भी सभी मंत्र, योग, जप, विद्या, जृंभक, अस्त्र, शस्त्र, शिक्षा और आगम हैं वे सभी सत्य पर स्थित हैं।

प्रश्नव्याकरण दूसरा संवर द्वार सूत्र २४

मज्झि वि न डज्झंति, उज्जुगा मणुसा सच्चेण य
तेल्लतउलोहसीसगाइं छिवंति धरेंति न य डज्झ
मणुसा, पव्वयकडकाहिं मुच्चंते न य मरंति सच्चेण
परिग्गहिया असिपंजरगया समराओ वि ।
अणहा य, सच्चवादी वहबंधभियोगवेरघोरेहिं
पमुच्चंति य अमित्तमज्झाहिं निइंति अणहा य
सादेव्वाणि य देवयाओ करेंति सच्चवयणे रताणं

भावार्थ- महा समुद्र के मध्य दिशा भूले हुए जहाज [सत्य के]
प्रभाव से स्थिर रहते हैं किन्तु डूबते नहीं हैं। सत्य के प्र[भाव से]
जल का उपद्रव होने पर मनुष्य न बहते हैं, न मरते ही हैं।
पानी का थाह पा लेते हैं। सत्य ही का यह प्रभाव है कि
अग्नि में जलते नहीं हैं। सरल सत्यवादी मनुष्य तपा हुआ
कथीर, लोहा और सीसा छू लेते हैं, हथेली पर रख लेते
जलते नहीं हैं। सत्य को अपनाने वाले पहाड़ से गिराये ज[ाने पर]
भी मरते नहीं हैं। सत्यधारी महापुरुष युद्ध में खड्ग हाथ [में लिये]
हुए विरोधियों के बीच घिर कर भी अक्षत निकल आ[ते हैं।]
घोर वध, बंध, अभियोग और शत्रुता से भी वे सत्य के [प्रभाव]
से मुक्ति पा लेते हैं और शत्रुओं के चंगुल से बच कर
आते हैं। सत्य से आकृष्ट हो देवता भी सत्यवादियों के
बने रहते हैं। प्रश्नव्याकरण दूसरा संवर द्वार

मुसावाओ उ लोगम्मि, सव्वसाहूहिं गरहिओ
अविस्सासो य भूयाणं, तम्हा मोसं विवज्जए

भावार्थ- संसार में साधु पुरुषों ने मृषा-असत्य की
निन्दा की है। असत्यवादी का कोई विश्वास नहीं
इसलिये असत्य से परहेज करना चाहिये।

दशवैकालिक छठा अध्ययन गा[था]

वितहं पि तहामुत्तिं, जं गिरं भासए नरो ।
तम्हा सो पुट्ठो पावेणं, किं पुणं जो मुसं वए ॥११॥

भावार्थ- जो मनुष्य भूल से भी, ऊपर से सत्य मालूम होने वाली किन्तु मूलतः असत्य भाषा बोलता है उससे भी वह पाप का भागी होता है, तब भला जान बूझ कर जो असत्य बोलता है उसके पाप का तो कहना ही क्या ? दशवैकालिक सातवां अ० गाथा ५

इहलोए दिक्खइ जीवा. जीहाछेअं वहं च बंधं वा ।
अयसं धणनासं वा, पावंती अलियवयणाओ ॥१२॥

भावार्थ- असत्य भाषण के फल स्वरूप प्राणी यहीं पर जिह्वा-छेद, वध और बन्ध रूप दुःख भोगते हैं। उनका लोक में अपयश होता है एवं धन का नाश होता है ।

धर्मसंग्रह दूसरा अधिकार श्लोक २६ टीका

अप्पणट्ठा परट्ठा वा, कोहा वा जइ वा भया ।
हिंसगं न मुसं बूया, नो वि अन्नं वयावए ॥ १३ ॥

भावार्थ- अपने स्वार्थ के लिये अथवा दूसरों के लिये, क्रोध से अथवा भय से, दूसरों को दुःख पहुँचाने वाला असत्य वचन न स्वयं कहे न दूसरों से कहलावे। दशवैकालिक छठा अ० गाथा ११

तहेव सावज्जणुमोअणी गिरा,
ओहारिणी जा य परोवघाइणी ।
से कोह लोह भय हास माणवो,
न हासमाणोऽवि गिरं वइज्जा ॥ १४ ॥

भावार्थ- साधक को पाप का अनुमोदन करने वाली, निश्चय-कारिणी तथा दूसरों [illegible] दुःख पहुँचाने वाली वाणी न कहना

चाहिये। उसे क्रोध, लोभ, भय और हास्य के वश
शब्द न कहना चाहिये। ऐसे हुए भी उसे न बोलना चाहि

दशवैकालिक सातवां अध्ययन गाथा ११

१२–अदत्तादान (चोरी) विरति

रूवे अतित्ते य परिग्गहे य, सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स, लोभाविले आययइ अदत्तं॥

भावार्थ– मनोज्ञ रूप आदि इन्द्रियविषयों से जो संतुष्ट न
है वह उनके परिग्रह में आसक्ति एवं लालसावाला बना र
है। अन्त में असंतोष से दुःखी एवं लोभ से कलुषित वह आ
अपनी इष्ट वस्तु पाने के लिये चोरी करता है।

उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा २९

सामी जीवादत्तं, तित्थयरेणं तहेव य गुरुहिं
एअमदत्तसरूवं, परूवियं आगमधरेहिं ॥२

भावार्थ– स्वामी से विना दी हुई वस्तु ग्रहण करना अद
दान है। प्राणधारी आत्मा का प्राणहरण भी उसकी आज्ञा
होने से अदत्तादान है। तीर्थङ्कर द्वारा निषिद्ध आचरण का से
करना अदत्तादान है एवं गुरु की आज्ञा विना कोई वस्तु ग्र
करना भी अदत्तादान है। इस प्रकार आगमधारी महात्माओं
अदत्तादान का स्वरूप बतलाया है।

प्रश्नव्याकरण तीसरा संवरद्वार सूत्र २६ टीका, धर्मसंग्रह २ अ० श्लोक २७

चित्तमंतमचित्तं वा, अप्पं वा जइ वा बहुं।
दंतसोहणमित्तं पि, उग्गहं सि अजाइया ॥
तं अप्पणा न गिण्हंति, नो ऽवि गिण्हावए परं
अन्नं वा गिण्हमाणं पि, नाणुजाणंति संजया ॥

भावार्थ- संयमी साधु, सचेतन पदार्थ हो या अचेतन पदार्थ हो, अल्पमूल्य पदार्थ हो या बहुमूल्य पदार्थ हो, यहाँ तक कि दांत कुरेदने का तिनका भी स्वामी से याचना किये बिना न स्वयं ग्रहण करते हैं, न दूसरों को ग्रहण करने के लिये प्रेरित करते हैं और न ग्रहण करने वालों का अनुमोदन ही करते हैं।

दशवैकालिक छठा अध्ययन गाथा १३-१४

तवतेणे वयतेणे रूवतेणे य जे नरे ।
आयारभाव तेणे य, कुव्वइ देवकिव्विसं ॥ ५ ॥

भावार्थ- जो साधु तप का चोर है, वचन (वाक्शक्ति) का चोर है, रूप का चोर है, आचार का चोर है एवं भाव का चोर है वह नीच योनि के किल्बिष देवों में उत्पन्न होता है।

दशवैकालिक पांचवां अध्ययन दूसरा उद्देशा गाथा ४६

१३——ब्रह्मचर्य-शील

तवेसु वा उत्तम बंभचेरं ॥ १ ॥

भावार्थ- ब्रह्मचर्य सभी तपों में प्रधान है।

सूत्रकृतांग छठा अध्ययन गाथा२३

इत्थिओ जे न सेवंति, आइमोक्खा हु ते जणा ॥२॥

भावार्थ- जो पुरुष स्त्रियों का सेवन नहीं करते उनका सर्वप्रथम मोक्ष होता है।

सूत्रकृतांग पन्द्रहवां अ० गाथा १०

जम्मि य आराहियम्मि आराहियं वयमिणं सव्वं,
सीलं तवो य विणओ य संजमो य खंती मुत्ती गुत्ती
तहेव य इहलोइयपारलोइय जसे य कित्ती य पच्चओ य॥३॥

भावार्थ- ब्रह्मचर्य व्रत की आराधना करने से सभी व्रतों ...

आराधना हो जाती है। शील, तप, विनय, संयम, क्षमा, निर्लोभता और गुप्ति ये सभी ब्रह्मचर्य की आराधना से आराधित होते हैं। ब्रह्मचारी इसलोक और परलोक में यश, कीर्ति एवं लोकविश्वास प्राप्त करता है।

जेण सुद्धचरिएण भवइ सुबंभणो सुसमणो सुसाहू स इसी स मुणी स संजए स एव भिक्खू जो सुद्धं चरति बंभचेरं ॥ ४ ॥

भावार्थ- ब्रह्मचर्य के शुद्ध आचरण से उत्तम ब्राह्मण, उत्तम श्रमण और उत्तम साधु होता है। ब्रह्मचर्य पालने वाला ही ऋषि है। वही मुनि है, वही साधु है और वही भिक्षु है।

प्रश्नव्याकरण चौथा संवर द्वार सूत्र १७

न रूव लावण्ण विलास हासं, न जंपियं इंगियपेहियं वा।
इत्थीण चित्तंसि निवेसइत्ता, दट्ठुं ववस्से समणे तवस्सी॥

भावार्थ- श्रमण तपस्वी स्त्रियों के रूप, लावण्य, विलास, हास्य, मधुर वचन, कामचेष्टा एवं कटाक्ष आदि को मन में तनिक भी स्थान न दे एवं रागपूर्वक देखने का कभी प्रयत्न न करे।

अदंसणं चेव अपत्थणं च, अचिंतणं चेव अकित्तणं च।
इत्थीजणस्सारियझाणजुग्गं, हियं सया बंभवए रयाणं॥३॥

भावार्थ- ब्रह्मचारी को स्त्रियों को रागपूर्वक न देखना चाहिये और न उनकी अभिलाषा करनी चाहिये। स्त्रियों का चिन्तन एवं कीर्तन भी कभी न करना चाहिये। सदा ब्रह्मचर्य व्रत में रहने वाले पुरुषों के लिये यह नियम उत्तम ध्यान प्राप्त करने में सहायक है एवं उनके लिये अत्यन्त हितकर है।

कामं तु देवीहिं विभूसियाहिं, न चाइया खोभइउं तिगुत्ता।

परिभुंजइ साहूहिं, तं गोयम ! केरिसं गच्छं ॥

भावार्थ- हे गौतम ! जहाँ साधु आर्याओं से लाये हुए पात्र आदि विविध उपकरणों का परिभोग करते हैं वह कैसा गच्छ है!

गच्छाचार प्रकीर्णक गाथा ९१

जत्थ समुद्देस काले, साहूणं मंडलीइ अज्जाओ
गोयम ! ठवंति पाए, इत्थीरज्जं न तं गच्छं ॥१२॥

भावार्थ- हे गौतम ! जहाँ भोजन के समय साधुओं की मंडली में आर्याएं पैर रखती हैं वह गच्छ नहीं किन्तु स्त्री राज्य है।

गच्छाचार प्रकीर्णक गाथा ९

विभूसा इत्थिसंसग्गो, पणीअं रसभोयणं
नरस्सत्तगवेसिस्स, विसं तालउडं जहा ॥ १३

भावार्थ- आत्मशोधक पुरुष के लिये शरीर का शृङ्गार, स्त्रि का संसर्ग और पौष्टिक स्वादिष्ट भोजन, तालपुट विष के समा घातक हैं।　　दशवैकालिक अध्य० ८० गाथा ५

मूलमेयमहम्मस्स, महादोससमुस्सयं ।
तम्हा मेहुणसंसग्गं, निग्गंथा वज्जयंति णं ॥ १४

भावार्थ- अब्रह्मचर्य अधर्म का मूल है और महादोषों पुंजरूप है। इसीलिये निर्ग्रन्थ मुनि स्त्रीसंसर्ग का त्याग करते

दशवैकालिक छठा अध्ययन गाथा १६

देवदाणव गंधव्वा, जक्ख रक्खस किन्नरा
बंभयारिं नमंसंति, दुक्करं जे करंति तं ॥ १५

भावार्थ- दुष्कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने
पुरुष को देव, दानव, ...
... नमस्कार करते हैं।

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो, इइ वुत्तं महेसिणा ॥ ४ ॥

भावार्थ– प्राणीमात्र के रक्षक ज्ञातपुत्र भगवान् महावीर ने अनासक्ति भाव से वस्त्रादि रखने में परिग्रह नहीं बतलाया है महावीर के अनुसार किसी वस्तु पर मूर्च्छा ममत्व यानी आसक्ति का होना ही वास्तव में परिग्रह है।

सव्वत्थुवहिणा बुद्धा, संरक्खण परिग्गहे ।
अवि अप्पणोऽवि देहम्मि, नायरन्ति ममाइयं॥ ५

भावार्थ– ज्ञानी पुरुष संयम के सहायभूत वस्त्र पात्रादि उपकरणों को केवल संयम की रक्षा के ख्याल से ही रखते हैं मूर्च्छाभाव से नहीं। वस्त्रपात्रादि पर ही क्या, वे तो अपने शरीर पर भी ममत्व नहीं रखते। दशवैकालिक छठा अध्ययन गाथा १७ से २

चित्तमंतमचित्तं वा, परिगिज्झ किसामवि ।
अन्नं वा अणुजाणाइ, एवं दुक्खा ण मुचइ ॥ ६

भावार्थ– जो व्यक्ति सचित्त या अचित्त थोड़ी या अधिक वस्तु परिग्रह की बुद्धि से रखता है अथवा दूसरे को परिग्रह रखने की अनुज्ञा देता है वह दुःख से छुटकारा नहीं पाता।

सूयगडांग पहला अध्ययन पहला उद्देशा गाथा २

परिग्गहे चेव होंति नियमा सल्ला दंडा य गारवा
कसाया सन्ना य कामगुणअण्हगा य इंदिय लेसाओ ॥

भावार्थ– मायादि शल्य, दण्ड, गारव, कषाय, संज्ञा, शब्दादि गुण रूप आश्रव, असंवृत इन्द्रियाँ और अप्रशस्त लेश्याएँ सभी परिग्रह होने पर अवश्य ही होते हैं।

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो अत्थि सव्वजीवाणं सव्वलोए ॥ ८ ॥

भावार्थ-सारे लोक में सभी जीवों के परिग्रह जैसा कोई प
(बन्धन) एवं प्रतिबन्ध नहीं है। प्रश्नव्याकरण पांचवां अधर्म द्वार सूत्र

य पडिलेहिज्जा सयणासणाइं,सिज्जं निसिज्ज तह भत्तपाणं
गामे कुले वा नगरे व देसे,ममत्तभावं न कहिंपि कुज्जा॥९॥

भावार्थ- साधु को चाहिये कि मासकल्पादि पूर्ण होने पर
विहार करते समय शयन, आसन,निषद्या (स्वाध्यायभूमि) एवं
क्त पान के सम्बन्ध में गृहस्थ को यह प्रतिज्ञा न करावे कि
वापिस आने पर उक्त वस्तुएं मुझे ही देना। ग्राम,कुल,नगर एवं
देश में कहीं भी साधु को उपकरणादि पर ममत्वभाव न रखना
चाहिये।

दशवैकालिक दूसरी चूलिका गाथा ८

जे ममाइयमतिं जहाति,से जहाइ ममाइतं।
से हु दिट्ठपहे मुणी, जस्स णत्थि ममाइतं॥१०॥

भावार्थ- जो ममत्व बुद्धि का त्याग करता है वह स्वीकृत परि-
ग्रह का त्याग करता है। जिसके ममत्व एवं परिग्रह नहीं है
उसी मुनि ने ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मोक्षमार्ग को जाना है।

आचारांग दूसरा अध्ययन छठा उद्देशा सूत्र ९९

उवहिम्मि अमुच्छिए अगिद्धे,
अन्नायउंछं पुलनिप्पुलाए।
कयविक्कयसंनिहीओ विरए,
सव्वसंगावगए अ जे स भिक्खू॥११॥

भावार्थ- जो साधु वस्त्र पात्रादि संयम के उपकरणों में मूर्च्छा
एवं गृद्धिभाव का त्याग करता है, अज्ञात कुलों से थोड़ी थोड़ी
शुद्ध भिक्षा लेता है, संयम को असार बनाने वाले दोषों से तथा
क्रय, विक्रय और संचय से दूर रहता है एवं सभी द्रव्य भाव

संगों से निर्लिप्त रहता है वही सच्चा भिक्षु है।

दशवैकालिक दसवां अध्ययन गाथा १६

१५— रात्रिभोजनत्याग

अत्थंगयम्मि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए ॥१॥

भावार्थ- सूर्य के उदय होने से पहले और सूर्य के अस्त हो जाने के बाद मुनि को सभी प्रकार के भोजन पान आदि की मन से भी इच्छा न करनी चाहिये। दशवैकालिक आठवां अ० गाथा २८

जइ ता दिवा न कप्पइ, तमसं ति काऊण कोट्ठगादीसुं ।
किं पुण तमस्सिनीए, कप्पिस्सइ सव्वरीए उ ॥२॥

भावार्थ- अंधकार वाले कोठे आदि में, अन्धकार के कारण, जब दिन में भी आहार पानी लेना मुनि को नहीं कल्पता फिर अन्धकार वाली रात्रि में आहारादि लेना उसके लिये कैसे ठीक हो सकता है। बृहत्कल्प भाष्य पहला उ० गाथा [illegible]

संति मे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा ।
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे ॥३॥

भावार्थ- संसार में बहुत से त्रस स्थावर प्राणी इतने सूक्ष्म होते हैं कि वे रात्रि में दिखाई नहीं देते। फिर उनकी रक्षा करते हुए रात्रि में आहार की शुद्ध एषणा एवं भोजन कैसे हो सकते?

उदउल्लं बीयसंसत्तं, पाणा निवडिया महिं ।
दिया ताइं विवज्जिज्जा, राओ तत्थ कहं चरे ॥४॥

भावार्थ-जहाँ पर कहीं पानी पड़ा होता है, कहीं बीज बिखरे

प्राणी की हिंसा न हो। फूलों से भँवरों की तरह वे गृहस्थों के यहाँ से, उनके निज के लिये बनाये हुए आहार में से थोड़ा थोड़ा आहार लेते हैं।

महुगारसमा बुद्धा, जे भवंति अणिस्सिया।
नाणापिंडरया दंता, तेण वुच्चंति साहुणो ॥ ४ ॥

भावार्थ-तत्त्वज्ञ मुनि भँवर जैसी वृत्ति वाले होते हैं। वे कुलादि के प्रतिबन्ध से रहित होते हैं, अनेक घरों से थोड़ा थोड़ा आहार लेकर अपना निर्वाह करते हैं एवं इन्द्रियों का दमन करते हैं इसी-लिये वे साधु कहे जाते हैं। दशवैकालिक पहला अ० गाथा २ से ५

१७—मृगचर्या

तं पितऽम्मापिअरो, छंदेणं पुत्त ! पव्वया ।
नवरं पुण सामण्णे, दुक्खं निप्पडिकम्मया ॥ १ ॥

भावार्थ-अन्त में माता पिता ने मृगापुत्र से कहा-हे पुत्र ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है तो खुशी के साथ तुम प्रव्रज्या धारण कर सकते हो। किन्तु तुम्हें मालूम होना चाहिये कि साधु अवस्था में रोग होने पर उसका उपचार (इलाज) नहीं किया जाता, यह नियम बड़ा ही कठोर है।

सो पितऽम्मापियरो !, एवमेयं जहाफुडं ।
परिकम्मं को कुणई, अरण्णे मियपक्खिणं ॥ २ ॥

भावार्थ- उत्तर में मृगापुत्र ने कहा- हे माता पिता ! आपका कहना यथार्थ है। पर यह भी विचारिये कि जंगल में मृग और पक्षियों का उपचार कौन करता है ?

एगब्भूओ अरण्णे वा, जहा उ चरई मिगो ।
एवं धम्मं चरिस्सामि, संजमेण तवेण य ॥ ३ ॥

भावार्थ– जैसे जंगल में मृग एकाकी विहार करता है इसी प्रकार संयम और तप का आचरण करता हुआ मैं भी एकाकी (रागद्वेष रहित) होकर विहार करूँगा।

जया मिगस्स आयंको, महारण्णम्मि जायइ ।
अच्छन्तं रुक्खमूलम्मि, को णं ताहे तिगिच्छइ ॥४॥

भावार्थ- जब महावन में मृग के रोग उत्पन्न होता है तब वृक्ष के नीचे बैठे हुए उस मृग की उस समय कौन चिकित्सा करता है?

को वा से ओसहं देइ, को वा से पुच्छइ सुहं ।
को वा से भत्तं च पाणं वा, आहरित्तु पणामए ॥५॥

भावार्थ- वहाँ उसे कौन औषधि देता है? कौन उसके शरीर का हाल पूछता है? उसे भोजन पानी लाकर कौन खिलाता पिलाता है?

जया से सुही होइ, तया गच्छइ गोचरं ।
भत्तपाणस्स अट्ठाए, वल्लराणि सराणि य ॥ ६ ॥

भावार्थ–जब मृग स्वतः स्वस्थ होता है। तब वह चरने के लिये जाता है और वन तथा जलाशयों में चारा पानी की खोज करता है।

खाइत्ता पाणियं पाउं, वल्लरेहिं सरेहिं य ।
मिगचारियं चरित्ताणं, गच्छइ मिगचारियं ॥

भावार्थ–जंगल में घास चर कर तथा सरोवर में पानी पी कर वह मृग की स्वाभाविक चर्या का आसेवन करता है एवं वापिस अपने निवासस्थान पर आ जाता है।

एवं समुट्ठिओ भिक्खू, एवमेव अणेगए ।
मिगचारियं चरित्ताणं, उड्ढं पक्कमई दिसं ॥ ८

भावार्थ- संयम क्रिया में समुद्यत भिक्षु, मृग की तरह, रोग होने पर चिकित्सा की परवाह नहीं करता। वह, मृग की तरह ही, किसी निश्चित स्थान पर विश्राम भी नहीं करता। इस प्रकार मृग जैसी चर्या का पालन कर मोक्षमार्ग का आराधक वह मुनि ऊर्ध्व दिशा की ओर गमन करता है अर्थात् निर्वाण प्राप्त करता है।

जहा मिए एग अणेगचारी, अणेगवासे धुवगोयरे अ।
एवं मुणी गोयरियं पविट्ठे, नो हीलए नो विय खिंसइज्जा॥६

भावार्थ- जैसे मृग अकेला रहता है और अपने घास पानी के लिये अनेक स्थानों में भ्रमण करता है, वह एक स्थान पर नहीं रहता और सदा गोचरी कर ही निर्वाह करता है। साधु भी मृग जैसी चर्या वाला होता है। गोचरी में यदि अमनोज्ञ आहार भी मिले तो उसका अनादर तथा दाता की निन्दा न करनी चाहिये।

[illegible]

१८—सच्चा त्यागी

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठीकुव्वई ।
साहीणे चयइ भोए, से हु चाइत्ति वुच्चइ ॥ १ ॥

भावार्थ- जो पुरुष [illegible] [illegible] है, [illegible] है [illegible] जाता है

[illegible]
[illegible] ॥ २ ॥

भावार्थ–जो अभाव या पराधीनता के कारण विवश हो वस्त्र, गन्ध, आभूषण, स्त्री, शय्या आदि भोग सामग्री का उपभोग नहीं करता वह त्यागी नहीं है। दशवैकालिक दूसरा अ० गाथा १, २

१६—वमन किये हुए को ग्रहण न करना

पक्खंदे जलियं जोइं, धूमकेउं दुरासयं ।
नेच्छन्ति वंतयं भोत्तुं, कुले जाया अगंधणे ॥ १ ॥

भावार्थ– अगंधन कुल में उत्पन्न हुए सर्प जलती हुई दुःसह अग्नि में कूद पड़ते हैं किन्तु वमन किये हुए विष का पान करने की इच्छा तक नहीं करते।

धिरत्थु ते जसोकामी, जो तं जीवियकारणा ।
वंतं इच्छसि आवेउं, सेयं ते मरणं भवे ॥ २ ॥

भावार्थ–हे अपयश के चाहने वाले ! तुम्हें धिक्कार है जो तुम असंयम जीवन के लिये वमन किये हुए भोगों को वापिस ग्रहण करना चाहते हो। इस अकार्य को करने की अपेक्षा तुम्हारा मर जाना बेहतर है। दशवैकालिक दूसरा अ० गाथा ६—७

वंतासी पुरिसो रायं, न सो होइ पसंसिओ ।
माहणेण परिच्चत्तं, धणमायाउमिच्छसि ॥ ३ ॥

भावार्थ– हे राजन् ! आप ब्राह्मण से छोड़े हुए धन को ग्रहण करना चाहते हैं। पर आपको यह मालूम होना चाहिये कि वमन की हुई वस्तु को खाने वाले की प्रशंसा नहीं, पर निंदा ही होती है। उत्तराध्ययन चौदहवाँ अ० गाथा ३८

जइ वंतं तु अभोज्जं, भत्तं जइवि सुसक्कयं आसि।
एवमसंजमवमणे, अणेसणिज्जं अभोज्जं तु ॥ ४ ॥

भावार्थ- चाहे भोजन कितना ही बढ़िया संस्कार वाला पर वमन कर देने पर वह जैसे खाने योग्य नहीं रहता। इसी तरह असंयम का त्याग कर देने के बाद असंयमकारी अनेषणीय आहार भी साधु के लिये भोजन योग्य नहीं होता। निशीथचूर्णि गाथा ११

निक्खम्ममाणाइ य बुद्धवयणे,
णिच्चं चित्तसमाहिओ हवेज्जा ।
इत्थीण वसं न यावि गच्छे,
वंतं नो पडिआयइ जे स भिक्खू ॥१॥

भावार्थ-भगवान की आज्ञानुसार दीक्षा लेकर जो सदा जिन वचनों में सावधान रहता है। स्त्रियों के वश नहीं होता तथा वमन किए हुए विषयों का पुनः सेवन नहीं करता वही सच्चा साधु है।
दशवैकालिक दसवां अध्ययन गाथा १

चिच्चाण धणं च भारियं, पव्वइओ हि सि अणगारियं ।
मा वंतं पुणो वि आविए,समयं गोयम! मा पमायए ॥

भावार्थ-हे गौतम! तुम धन और स्त्री का त्याग कर दीक्षित हुए हो। वमन किये हुए इनका पुनः पान न करना एवं समय मात्र भी प्रमाद न करना। उत्तराध्ययन दसवां अ० गाथा २९

२०— पूजा प्रशंसा का त्याग

अच्चणं रयणं चेव, वंदणं पूयणं तहा ।
इड्ढी सक्कार सम्माणं,मणसा वि न पत्थए ॥

भावार्थ- अर्चा, पूजा, वन्दना, नमस्कार, ऋद्धि, सत्कार और सम्मान-इनकी मुमुक्षु मन से भी इच्छा न करे।
उत्तराध्ययन ३५ वां अध्ययन गाथा १

जसं किति सिलोगं च, जा य वंदण पूयणा ।
सव्वलोयंसि जे कामा, तं विज्जं परिजाणिया ॥२॥

भावार्थ–यश, कीर्ति, श्लाघा, वन्दन और पूजन तथा समस्त लोक में जो कामभोग हैं वे आत्मा के लिये अहितकर हैं। अतएव विद्वान् मुनि को इनका त्याग करना चाहिये।

सूयगडांग नवां अध्ययन गाथा २२

अभिवायणं मब्भुट्ठाणं, सामी कुज्जा निमंतणं ।
जो ताइं पडिसेवंति, नो तेसिं पीहए मुणी ॥३॥

भावार्थ–जो स्वतीर्थी या अन्यतीर्थी साधु राजा आदि द्वारा किये गये अभिवादन (नमस्कार), अभ्युत्थान एवं निमंत्रण का सेवन करते हैं। उन्हें देखकर साधु उनके सौभाग्य की सराहना एवं कामना न करे।

उत्तराध्ययन दूसरा अ० गाथा ३८

नो कित्ति वण्ण सद्द सिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा ।
नो कित्तिवण्णसद्दसिलोगट्ठयाए आयारमहिट्ठेज्जा।४।

भावार्थ–आचार का पालन एवं तप का अनुष्ठान कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लाघा के लिये न होना चाहिये।

नोट— सभी दिशाओं में फैला हुआ यश कीर्ति है, एक दिशा में फैला हुआ यश वर्ण है। अर्द्ध दिशा में फैला हुआ यश शब्द एवं स्थानीय यश श्लाघा कहा जाता है।

दशवैकालिक नवां अध्ययन चौथा उद्देशा

जे न वंदे न से कुप्पे, वंदिओ न समुक्कसे ।
एवमन्नेसमाणस्स, सामण्णमणुचिट्ठइ ॥ ५ ॥

भावार्थ– साधु को चाहिये कि वन्दना न करने वाले पर वह

भावार्थ– जो ऋद्धि सत्कार और पूजा का त्याग करता है, जो ज्ञानादि में स्थित है एवं मायारहित है वही भिक्षु है।

दशवैकालिक दसवां अध्ययन गाथा १७

नो सक्कियं मिच्छइ न पूयं,
नो वि य वंदणगं कुओ पसंसं।
से संजए सुव्वए तवस्सी,
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥१०॥

भावार्थ–जो साधु सत्कार नहीं चाहता, वन्दना और पूजा की इच्छा नहीं करता एवं प्रशंसा का अभिलाषी नहीं है वही सदनुष्ठान करने वाला, सुव्रत वाला और तपस्वी है। ज्ञान क्रिया सहित होकर मोक्ष की गवेषणा करने वाला वही सच्चा भिक्षु है।

उत्तराध्ययन पन्द्रहवां अध्ययन गाथा ५

२१— रति अरति

अमरोवमं जाणिय सोक्खमुत्तमं,
रयाण परियाए तहाऽरयाणं।
निरयोवमं जाणिय दुक्खमुत्तमं,
रमेज्ज तम्हा परियाए पंडिए ॥१॥

भावार्थ–संयम में रति रखने वाले मुनियों के लिये साधु पर्याय देवलोक की तरह सुखद है एवं संयम में अरति वालों को यही पर्याय नरक की तरह दुःखद प्रतीत होती है। इसलिये पंडित मुनि सदा साधु-पर्याय में रत रहे।

दशवैकालिक पहली चूलिका गाथा ११

सज्झाय संजम तवे, वेयावच्चे य झाण जोगे य।
जो रमइ नो रमइ असंजमम्मि सो वयइ सिद्धिं॥२॥

कोप न करे और न वन्दना किये जाने से अभिमान ही करे भगवान् की इस आज्ञा का आराधक मुनि पूर्ण साधुत्व का अधिकारी होता है। दशवैकालिक पाँचवां अध्ययन दूसरा उद्देश गाथा ३०

तेसिं पि न तवो सुद्धो, निक्खन्ता जे महाकुला।
जं नेवन्ने वियाणंति, न सिलोगं पवेज्जए ॥६॥

भावार्थ- महान् सम्पन्न कुल के ऋद्धि ऐश्वर्य का त्याग कर दीक्षा लेने वाले पुरुष भी यदि पूजा प्रतिष्ठा के लिये तप का आचरण करते हैं तो उनका यह तप अशुद्ध है। साधु को इस प्रकार तप करना चाहिये कि दूसरों को उसका पता ही न लगे। उसे अपनी प्रशंसा भी कभी न करनी चाहिये। सूयगडांग अ० गाथा २

महयं पलिगोव जाणिया, जा वि य वंदण पूयणा इहं
सुहुमे सल्ले दुरुद्धरे, विउमन्ता पयहिज्ज संथवं ॥७॥

भावार्थ- लोक में जो वन्दना पूजा रूप सत्कार होता है वह साधु के लिये महान् अभिष्वङ्ग (आसक्ति) रूप है। यह बड़ा ही सूक्ष्म शल्य है जिसका निकालना अति कठिन है। अतएव विवेकशील साधु को गृहस्थों से परिचय ही न रखना चाहिये।
सुयगडांग दूसरा अध्ययन दूसरा उद्देशा गाथा ११

पूयणट्ठा जसोकामी, माणसम्माणकामए।
बहुं पसवइ पावं, मायासल्लं च कुव्वइ ॥८॥

भावार्थ– पूजा एवं प्रशंसा की कामना तथा मान सन्मान की लालसा वाला साधु बहुत पाप करता है एवं माया शल्य का सेवन करता है। दशवैकालिक पाँचवा अ० दूसरा उ० गाथा ३५

इड्ढिं च सक्कारण पूयणं च।
चए ठियप्पा अणिहे जे स भिक्खू ॥९॥

भावार्थ– जो ऋद्धि सत्कार और पूजा का त्याग करता है, जो ज्ञानादि में स्थित है एवं मायारहित है वही भिक्षु है।

दशवैकालिक दसवाँ अध्ययन गाथा १७

नो सक्कियमिच्छइ न पूयं,
नो वि य वंदणगं कुओ पसंसं।
से संजए सुव्वए तवस्सी,
सहिए आयगवेसए स भिक्खू ॥१०॥

भावार्थ–जो साधु सत्कार नहीं चाहता, वन्दना और पूजा की इच्छा नहीं करता एवं प्रशंसा का अभिलाषी नहीं है वही सदनुष्ठान करने वाला, सुव्रत वाला और तपस्वी है। ज्ञान क्रिया सहित होकर मोक्ष की गवेषणा करने वाला वही सच्चा भिक्षु है।

उत्तराध्ययन पन्द्रहवाँ अध्ययन गाथा ५

२१— रति अरति

अमरोवमं जाणिय सोक्खमुत्तमं,
रयाण परियाय तहाऽरयाणं।
निरयोवमं जाणिय दुक्खमुत्तमं,
रमेज्ज तम्हा परियाय पंडिए ॥१॥

भावार्थ–संयम में रति रखने वाले मुनियों के लिये साधु पर्याय देवलोक की तरह सुखद है एवं संयम में अरति वालों को यही पर्याय नरक की तरह दुःखद प्रतीत होती है। इसलिये पंडित मुनि सदा साधु-पर्याय में रत रहे।

दशवैकालिक पहली चूलिका गाथा ११

सज्झाय संजम तवे, वेयावच्चे य झाण जोगे य।
जो रमइ नो रमइ असंजमम्मि सो पावइ सिद्धिं॥२॥

भावार्थ- जो पुरुष स्वाध्याय, संयम, तप, वैयावृत्य तथा धर्म-ध्यान में रत रहता है और असंयम से विरत रहता है वह मोक्ष प्राप्त करता है। [illegible]

अरइं आउट्टे से मेहावी, खणंसि मुक्के ॥ ३ ॥

भावार्थ- संसार की असारता को जानने वाला साधु संयम विषयक अरति को दूर करे। ऐसा करने से वह अल्प काल में ही मुक्त हो जाता है। आचारांग [illegible] सूत्र [illegible]

नारइं सहई वीरे, वीरे न सहई रइं ।
जम्हा अविमणे वीरे, तम्हा वीरे न रज्जइ ॥ ४ ॥

भावार्थ- वीर साधु संयम विषयक अरति एवं विषय परिग्रह सम्बन्धी रति को अपने मन में स्थान नहीं देता। उक्त रति अरति से निवृत्त होने के कारण वह शब्दादि विषयों में मूर्छित नहीं होता। आचारांग दूसरा अ० [illegible]

अरइं पिट्ठओ किच्चा, विरए आयरक्खिए ।
धम्मारामे निरारंभे, उवसंते मुणी चरे ॥ ५ ॥

भावार्थ- यदि कभी मोहवश साधु को संयम में अरति उत्पन्न हो तो उसे उसका तिरस्कार कर देना चाहिये। हिंसादि से निवृत्त एवं दुर्गति से आत्मा की रक्षा चाहने वाले साधु को धर्म ही में रत रहना चाहिये। उसे आरम्भ तथा कषाय का त्याग करना चाहिये।

उत्तराध्ययन दूसरा अध्ययन गाथा १२

बालाभिरामेसु दुहावहेसु, न तं सुहं कामगुणेसु रायं ।
विरत्तकामाण तवोधणाणं, जं भिक्खुणं सीलगुणे रयाण ॥

भावार्थ- हे राजन् ! बालमनोहर दुःखावह इन कामगुणों,

में, वह सुख नहीं है जो सुख शील गुणों में रत रहने वाले, शब्दादि विषयों से विरक्त तपस्वी मुनियों को होता है।

उत्तराध्ययन तेरहवां अध्ययन गाथा १७

२२— यतना

कहं चरे कहं चिट्ठे, कहं आसे कहं सए ।
कहं भुंजन्तो भासन्तो, पावं कम्मं न बंधइ ॥ १ ॥

भावार्थ-कैसे चले? कैसे खड़ा हो? कैसे बैठे और कैसे सोवे? तथा किस प्रकार भोजन एवं भाषण करे कि पाप कर्म का बन्ध न हो?

जयं चरे जयं चिट्ठे, जयमासे जयं सए ।
जयं भुंजंतो भासंतो, पावं कम्मं न बंधइ ॥ २ ॥

भावार्थ-यतना से चले, यतना से खड़ा हो, यतना से बैठे और यतना से सोवे। इसी प्रकार यतना से भोजन एवं भाषण करने से पाप कर्म का बंध नहीं होता। दशवैकालिक चौथा अ० ग. गा ७-८

जयणेह धम्म जणणी, जयणा धम्मस्स पालणी चेव।
तव वुड्ढिकरी जयणा, एगंतसुहावहा जयणा ॥ ३ ॥

भावार्थ- यतना धर्म की जननी है और यतना ही धर्म का रक्षण करने वाली है। यतना से तप की वृद्धि होती है और यह एकान्त रूप से सुख देने वाली है। [illegible]

२३— विनय

एवं धम्मस्स विणओ, मूलं परमो से मुक्खो।
जेण कित्ति सुयं सिग्घं, नीसेसं चाभिगच्छइ॥ १ ॥

भावार्थ- विनय धर्म रूप वृक्ष का मूल है और मोक्ष उसका सर्वोत्तम रस है। विनय से कीर्ति होती है और पूर्णतः प्रशस्त श्रुतज्ञान का लाभ होता है। दशवैकालिक नवां अ० उ० २ गाथा २

विणओ सासणे मूलं, विणीओ संजओ भवे ।
विणयाउ विप्पमुक्कस्स, कओ धम्मो कओ तवो॥२॥

भावार्थ- विनय जिनशासन का मूल है। विनीत पुरुष ही संयमवन्त होता है। जो विनयरहित है उसके धर्म और तप कहाँ से हो सकते हैं? हरिभद्रीयावश्यक निर्युक्ति गाथा १२१६

आणा निद्देसकरे, गुरूण मुववायकारए ।
इंगियागार सम्पन्ने, से विणीए त्ति वुच्चइ ॥३॥

भावार्थ- जो गुरु की आज्ञा पालता है, उनके पास रहता है, उनके इंगित तथा आकारों को समझता है वही शिष्य विनीत कहलाता है। उत्तराध्ययन पहला अ० गाथा २

विणएण णरो गंधेण, चंदणं सोमयाइ रयणियरो।
महुररसेणं अमयं, जणप्पियत्तं लहइ भुवणे ॥४॥

भावार्थ- जैसे संसार में सुगन्ध के कारण चन्दन, सौम्यता के कारण शशि एवं मधुरता के कारण अमृत लोक में प्रिय है। इसी प्रकार विनय के कारण मनुष्य भी लोगों का प्रिय बन जाता है। धर्म रत्न प्रकरण १ अधिकार

अणासवा थूलवया कुसीला, मिउंपि चंडं पकरंति सीसा।
चित्ताणुया लहु दक्खोववेया, पसायए ते हु दुरासयं पि॥५॥

भावार्थ-गुरु का वचन नहीं सुनने वाले, कठोर वचन बोलने वाले एवं दुःशील का आचरण करने वाले शिष्य सौम्य स्वभाव

वाले गुरु को भी क्रोधी बना देते हैं। इसके विपरीत गुरु की चित्त-वृत्ति का अनुसरण करने वाले और बिना विलम्ब शीघ्र ही गुरु का कार्य करने वाले शिष्य तेज स्वभाव वाले गुरु को भी प्रसन्न कर लेते हैं। उत्तराध्ययन पहला अध्ययन गाथा १३

जे यावि मंदत्ति गुरुं विइत्ता, डहरे इमे अप्पसुए त्ति नच्चा।
हीलंति मिच्छं पडिवज्जमाणा, करेंति आसायण ते गुरूणं॥

भावार्थ-गुरु को मन्दबुद्धि, छोटी अवस्था का एवं अल्पश्रुत जान कर जो उनकी अवहेलना करते हैं वे मिथ्यात्व को प्राप्त कर गुरु की आशातना करते हैं। दशवैकालिक नवाँ अध्ययन पहला उ० गाथा २

विणयं पि जो उवाएणं, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंतिं, दंडेण पडिसेहए ॥ ७ ॥

भावार्थ- विविध उपायों से विनय के लिये जो प्रेरणा करता है उस पर कोप करना मानो आती हुई दिव्य लक्ष्मी को लाठी मार कर रोकना है। दशवैकालिक नवाँ अध्ययन उ० २ गाथा ४

जे यावि अणायगे सिया, जे वि य पेसगपेसगे सिया।
जे मोणपयं उवट्ठिए, नो लज्जे समयं सया चरे ॥ ८॥

भावार्थ- चाहे कोई अनायक यानी स्वामी रहित चक्रवर्ती हो या कोई दास का भी दास हो किन्तु जिसने संयम स्वीकार किया है उसे लज्जा का त्याग कर समभाव का आचरण करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि चक्रवर्ती को, दासानुदास को, वन्दना करने में लज्जित न होना चाहिये और न दासानुदास को चक्रवर्ती से वन्दना पाकर गर्वित ही होना चाहिये।

सूयगडांग दूसरा अध्ययन दूसरा उद्देश गाथा ३

जे आयरियउवज्झायाणं, सुस्सूसावयणंकरा
तेसिं सिक्खा पवड्ढंति, जलसित्ता इव पायवा॥१

भावार्थ-जो शिष्य आचार्य उपाध्याय की सेवा शुश्रूषा क हैं, उनकी आज्ञा का पालन करते हैं उनका ज्ञान जल से सींचे हुए वृक्षों की तरह खूब बढ़ता है। दशवैकालिक नवाँ अ० उ०२ गाथा

विवत्ती अविणीयस्स, संपत्ती विणीयस्स य ।
जस्सेयं दुहओ नायं, सिक्खं से अभिगच्छइ ॥१

भावार्थ-अविनीत को विपत्ति प्राप्त होती है और विनीत सम्पत्ति प्राप्त होती है जिसने ये दो बातें जान ली हैं वही शि प्राप्त कर सकता है। दशवैकालिक नवाँ अ० दूसरा उ० गाथा २१

णच्चा णमइ मेहावी, लोए कित्ती से जायइ ।
हवइ किच्चाण सरणं, भूयाणं जगई जहा ॥ ११

भावार्थ- बुद्धिमान् पुरुष विनय का माहात्म्य समझ विनम्र बनता है। लोक में उसकी कीर्ति होती है और वह सद ग्रानों का आधार रूप होता है जैसे कि पृथ्वी प्राणियों के लि आधाररूप है। उत्तराध्ययन पहला अ० गाथा ४५

२४— विजय

जे केइ पत्थिवा तुज्झं, नानमंति नराहिवा ।
वसे ते ठावइत्ताणं, तओ गच्छसि खत्तिया ॥ १

भावार्थ-इन्द्र-हे राजन् ! जो राजा तुम्हारी अधीनता स्वी कर तुम्हें झुकते नहीं हैं उन्हें अधीन कर पीछे तुम प्रव्रज्या ले

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ॥

भावार्थ-इन्द्र को राजर्षि नमिराज का उत्तर-एक वीर दुर्जय संग्राम में लाखों योद्धाओं को जीत लेता है और एक महात्मा अपने आत्मा पर विजय प्राप्त करता है। इन दोनों में महात्मा की विजय ही श्रेष्ठ विजय है।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाण मेवमप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ॥ ३ ॥

भावार्थ-अपनी आत्मा के साथ ही युद्ध करना चाहिये। बाहरी स्थूल शत्रुओं के साथ युद्ध करने से क्या लाभ? आत्मा द्वारा आत्मा को जीतने वाला ही वास्तव में पूर्ण सुखी होता है।

पंचिंदियाणि कोहं, माणं मायं तहेव लोभं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं, सव्वमप्पे जिए जियं ॥ ४ ॥

भावार्थ- पाँच इन्द्रियाँ, क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सब से अधिक दुर्जेय मन को जीतना ही आत्मा की विजय है। आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीत लिया जाता है।

उत्तराध्ययन नवाँ अध्ययन गाथा ३२,३४,३५,३६

अणेगाणं सहस्साणं, मज्झे चिट्ठसि गोयमा!।
ते य ते अहिगच्छंति, कहं ते निज्जिया तुमे ॥५॥

भावार्थ-केशीस्वामी- हे गौतम! तुम हजारों शत्रुओं के बीच रहते हो और वे तुम पर आक्रमण करते रहते हैं। तुमने उन सभी को कैसे जीत लिया?

एगे जिए जिया पंच, पंच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताणं, सव्वसत्तू जिणामहं ॥ ६ ॥

भावार्थ केशीस्वामी को गौतम स्वामी का उत्तर-एक आत्मा

को जीतने से पाँच यानी आत्मा तथा चार कषाय जीते जाते हैं। पाँच को जीतने से दस यानी पाँच तथा पाँच इन्द्रियाँ ये दस जीते जाते हैं। तथा दसों को जीत कर मैं सभी शत्रुओं को जीत लेता हूँ।

एगप्पा अजिए सत्तू, कसाया इंदियाणि य।
ते जिणित्तु जहानायं, विहरामि अहं मुणी ॥७॥

भावार्थ- वश नहीं किया हुआ यह आत्मा शत्रु है। इसी प्रकार कषाय और इन्द्रियाँ भी वश न होने से शत्रुरूप हैं। हे मुने! मैं इन शत्रुओं को शास्त्रोक्त न्याय से जीत कर शान्तिपूर्वक विहार करता हूँ। उत्तराध्ययन तेईसवाँ अ० गाथा ३८, ३६, ३७

इमेणं चेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झओ।
जुद्धारिहं खलु दुल्लहं ॥ ८ ॥

भावार्थ-कषाय और विषयों के वश हुए इस आत्मा के साथ युद्ध करो, बाहर युद्ध करने से क्या लाभ? आत्मयुद्ध योग्य यह मानव भव अति दुर्लभ है।

आचारांग पाँचवाँ अ० दूसरा उ० सूत्र १५४,१५५

२५— दान

दाणं सीलं च तवो भावो, एवं चउव्विहो धम्मो।
सव्व जिणेहिं भणिओ, तहा दुहा सुअचरित्तेहिं॥१॥

भावार्थ-दान, शील, तप और भावना—यह चार प्रकार का धर्म सभी तीर्थङ्करों ने कहा है। श्रुत चारित्र के भेद से धर्म के दो प्रकार भी उन्होंने कहे हैं। सप्ततिशतस्थान प्रकरण गाथा ९६

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं ॥ २ ॥

भावार्थ- सभी दानों में अभयदान श्रेष्ठ है।

सूत्रकृतांग सूत्र अध्ययन गाथा २३

पत्तह करवि परिणमइ, थोड वि पत्तह दिण्णु ।
साइयजलु सिप्पिहिं गयउ,मुत्तिउ होइ रवण्णु ॥३॥

भावार्थ- पात्र को दिया हुआ दान धर्म रूप परिणत होता है। स्वातिजल सीप में पड़ कर रमणीय मोती बन जाता है।

सावयधम्म दोहा गाथा ८१

तते णं मल्ली अरहा कल्लाकल्लिं जाव मागहओ पायरासोत्ति बहूणं सणाहाण य अणाहाण य पंथियाण य पहियाण य करोडियाण य कप्पडियाण य एगमेगं हिरण्णकोडिं अट्ठ य अणूणाति सयसहस्साति इमेयारूवं अत्थसंपदाणं दलयति ॥४॥

भावार्थ-(मल्लिनाथ का संवत्सरदान) इसके पश्चात् मल्लि तीर्थङ्कर, प्रतिदिन सूर्योदय से प्रातःकालीन भोजनसमय यानी दोपहर तक, सनाथ, अनाथ, पथिक, प्रेष्य तथा भिक्षुओं को पूरे एक करोड़ आठ लाख स्वर्ण मोहरों परिमाण धन का दान करने लगे।

ज्ञातासूत्र आठवां अध्ययन सू० ७८

संवच्छरेण होहिति, अभिणिक्खमणं तु जिणवरिंदाणं।
तो अत्थि संपदाणं, पव्वत्तती पुव्वसूराओ ॥ ५ ॥
एगा हिरण्ण कोडी,अट्ठेव अणूणगा सय सहस्सा ।
सूरोदयमादीयं, दिज्जइ जा पायरासोत्ति ॥ ६ ॥

भावार्थ- तीर्थङ्कर देव दीक्षा धारण करने से एक वर्ष पहले सूर्योदय से लेकर दान देना प्रारम्भ करते हैं।

सूर्योदय से लेकर प्रातःकालीन भोजन तक वे एक करोड़

आठ लाख स्वर्ण मोहरों का दान करते हैं।

आचारांग दूसरा श्रुतस्कन्ध तेईसवां अध्ययन गाथा ११२,११३

दुल्लहा हु मुहादाई, मुहाजीवी वि दुल्लहा ।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुग्गई ॥३॥

भावार्थ–बदला पाने की आशा बिना निःस्वार्थ बुद्धि से दान देने वाले दुर्लभ हैं और निस्पृहभाव से शुद्ध भिक्षा द्वारा जीवन यापन करने वाले भी विरले ही होते हैं। निःस्वार्थ भाव से दान देने वाले और निस्पृह भाव से दान लेने वाले दोनों ही सुगति में जाते हैं। दशवैकालिक पाँचवां अ० पहला उ० गाथा १००

२६— तप

जहा महातलागस्स, संनिरुद्धे जलागमे ।
उस्सिचणाए तवणाए, कमेणं सोसणा भवे ॥१॥

भावार्थ–जिस तालाब में नया पानी आना बन्द है उसका पानी, बाहर निकालने से तथा धूप से जैसे धीरे धीरे सूख जाता है।

एवं तु संजयस्सावि, पावकम्म निरासवे ।
भवकोडीसंचियं कम्मं, तवसा निज्जरिज्जई ॥२॥

भावार्थ– इसी प्रकार नवीन पाप कर्म रोक देने पर, संयमी साधुओं के करोड़ों भवों के संचित कर्म तप द्वारा नष्ट हो जाते हैं।

उत्तराध्ययन तीसवां अध्ययन गाथा ५-६

तवेणं भंते जीवे किं जणेइ ? तवेणं वोदाणं जणेइ ॥३॥

भावार्थ– हे भगवन् ! तप का आचरण करने से क्या फल प्राप्त होता है ? तप से पूर्व बद्ध कर्मों का नाश होता है एवं आत्मा विशिष्ट शुद्धि प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन उनतीसवां अ० प्रश्न २७

तवनारायजुत्तेणं, भित्तूणं कम्मकंचुयं ।
मुणी विगयसंगामो, भवाओ परिमुच्चए ॥ ४ ॥

भावार्थ- (संग्राम रूपी धनुष से) तप रूप बाण चढ़ा कर मुनि कर्म रूप कवच (बख्तर) का भेदन कर देता है और संग्राम से निवृत्त होकर इस संसार से मुक्त हो जाता है।

उत्तराध्ययन नवां अध्ययन गाथा २२

कसेहि अप्पाणं, जरेहि अप्पाणं। जहा जुन्नाइं कट्ठाइं
हव्ववाहो पमत्थति, एवं अत्तसमाहिते अणिहे ॥५॥

भावार्थ- कठोर तप का आचरण कर आत्मा को कृश एवं जीर्ण कर दो। जैसे अग्नि जीर्ण काष्ठ को शीघ्र ही जला देती है इसी प्रकार आत्मसमाधिवन्त मुनि स्नेह रहित होकर तप रूप अग्नि से कर्म रूपी काष्ठ को शीघ्र ही जला देता है।

आचारांग चौथा अध्ययन तीसरा उद्देशा सूत्र १३६

विविहगुणतवोरए य निच्चं, भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं, जुत्तो सया तवसमाहिए ॥६॥

भावार्थ- तप समाधिवन्त मुनि सदा विविध गुण वाले तप में रत रहता है। वह ऐहिक एवं पारलौकिक सुखों की कामना नहीं करता। कर्मों की निर्जरा चाहने वाला वह मुनि तप द्वारा पुराने कर्म दूर कर देता है। दशवैकालिक नवां अ० चौथा उ० गाथा ४

सो हु तवो कायव्वो, जेण मणो ऽमंगलं न चिंतेइ ।
जेण न इंदियहाणी, जेण य जोगा ण हायंति ॥७॥

भावार्थ- तप ऐसा करना चाहिये कि विचारों की पवित्रता बनी रहे। इन्द्रियों की शक्ति हीन न हो एवं साधु के दैनिक कर्तव्यों

भावार्थ- जो पण्डित मुनि अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचर्या, रसपरित्याग, कायाक्लेश और प्रतिसंलीनता रूप बाह्य तप एवं प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय ध्यान और व्युत्सर्ग रूप आभ्यन्तर तप का सम्यक् आचरण करता है वह शीघ्र ही चतुर्गति रूप संसार से मुक्त हो जाता है। उत्तराध्ययन तीसवां अ० गाथा ३७

२७— अनासक्ति

जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा ।
एव अलित्तं कामेहिं, तं वयं बूम माहणं ॥ १ ॥

भावार्थ - जैसे कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से निर्लिप्त रहता है। इसी प्रकार कामभोगों में लिप्त–आसक्त न होने वाले पुरुष को हम ब्राह्मण कहते हैं। उत्तराध्ययन पचीसवां अ० गाथा २७

रूवेसु जो गिद्धिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे से जह वा पयंगे, आलोयलोले समुवेइ मच्चुं ॥२॥

भावार्थ– जो आत्मा, रूप में तीव्र गृद्धि–आसक्ति रखता है वह असमय में ही विनाश प्राप्त करता है। रागातुर पतंग दीपक की लौ में मूर्छित होकर प्राणों से हाथ धो बैठता है।

सद्देसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ सो विणासं।
रागाउरे हरिणमिगव्व मुद्धे, सद्दे अतित्ते समुवेइ मच्चुं।३।

भावार्थ– जो जीव शब्दों में अत्यन्त आसक्त है वह अकाल ही में विनष्ट हो जाता है। रागवश हिरण संगीत में मुग्ध होकर अतृप्त ही मौत का शिकार हो जाता है।

गंधेसु जो गेहिं मुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे ओसहिगंधगिद्धे, सप्पे बिलाओ विव निक्खमंते॥

भावार्थ- जो जीव गंध में तीव्र आसक्ति रखता है वह नागदमनी आदि औषधि की सुगन्ध में गृद्ध होकर रागवश बिल से बाहर आये हुए सर्प की तरह शीघ्र ही विनाश प्राप्त करता है।

रसेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे बडिसविभिन्नकाए, मच्छे जहा आमिसभोगगिद्धे

भावार्थ- रागवश मांस के स्वाद में मूर्छित हुआ मत्स्य (मछली) जैसे कांटे में फँस कर मर जाता है इसी प्रकार रसों में गृद्धि रखने वाला आत्मा भी अकाल ही में विनाश पाता है।

फासेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे सीयजलावसन्ने, गाहग्गहीए महिसे व रन्ने ॥३॥

भावार्थ- रागवश शीतल जल में सुख से बैठा हुआ भैंसा जैसे मगर से पकड़ा जाकर मारा जाता है इसी प्रकार मनोहर स्पर्शों में तीव्र आसक्ति वाला आत्मा अकाल ही में विनाश पाता है।

भावेसु जो गेहिमुवेइ तिव्वं, अकालियं पावइ से विणासं।
रागाउरे कामगुणेसु गिद्धे, करेणुमग्गावहिए व नागे ॥७

भावार्थ- कामगुणों में गृद्ध होकर हथिनी का पीछा करने वाला रागातुर हाथी जैसे पकड़ा जाता है और संग्राम में मारा जाता है इसी प्रकार विषय सम्बन्धी भावों में तीव्र गृद्धि रखने वाला आत्मा अकाल ही में विनाश प्राप्त करता है।

उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा [illegible]

जे इह सायाणुगा णरा, अज्झोववन्ना कामेहिं मुच्छिया।
किवणेण समं पगब्भिया, न वि जाणंति समाहिमाहियं।

भावार्थ– इसलोक में जो सुख के पीछे पड़े रहते हैं, समृद्धि, रस और साता गारव में आसक्त हैं और कामभोगों में मूर्छित हैं वे कायर हैं और शब्दादि विषय सेवन के लिये ढिठाई करते हैं। वे लोग कहने पर भी धर्मध्यान रूप समाधि को नहीं समझते।

सूयगडांग सूत्र अध्ययन तीसरा उद्देशा गाथा ४

अणिस्सिओ इहं लोए, परलोए अणिस्सिओ।
वासीचंदण कप्पो अ, असणे अणसणे तहा॥ ९॥

भावार्थ– मुमुक्षु इसलोक और परलोक के सुखों में आसक्ति-रहित होता है और इसलिये वह सदनुष्ठानों का सेवन उन्हें पाने की आशा से नहीं करता। बसूले से शरीर छीलने वाले शत्रु से वह द्वेष नहीं करता और न चन्दन का लेप करने वाले पर रागभाव ही लाता है। मनोज्ञ या अमनोज्ञ भोजन मिलने पर एवं भोजन के अभाव में भी वह सदा समभाव रखता है।

उत्तराध्ययन उन्नीसवाँ अ० गाथा ९२

२८—आत्म-दमन

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दंतो सुही होइ, अस्सिं लोए परत्थ य॥ १॥

भावार्थ– आत्मा का दमन (वश) करना अति कठिन है। इसलिये आत्मा ही का दमन करना चाहिये। जिसने अपनी आत्मा को वश किया है वह इसलोक और परलोक दोनों जगह सुखी होता है।

वरं मे अप्पा दंतो, संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहिं दम्मंतो, बंधणेहि वहेहि य॥ २॥

भावार्थ-दूसरे लोग वध बन्धनादि द्वारा मेरा दमन करें इस की अपेक्षा यही अच्छा है कि मैं संयम और तप का आचरण कर अपने आप ही अपना दमन करूँ। उत्तराध्ययन पहला अ० गाथा १६,१

पुरिसा, अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि ॥ ३ ॥

भावार्थ-हे पुरुषो! आत्मा को विषयों की ओर जाने से रोको इस प्रकार तुम दुःखों से छूट सकोगे आचारांग अ० ३ उ० ३ सूत्र ११

अप्पा हु खलु सययं रक्खियव्वो,
सव्विन्दिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ,
सुरक्खिओ सव्वदुक्खाण मुच्चइ ॥ ४ ॥

भावार्थ- समस्त इन्द्रियों को अपने अपने विषयों की ओर जाने से रोक कर, पापों से अपनी आत्मा की रक्षा करनी चाहिये पापों से अरक्षित आत्मा संसार में भटका करता है और सुरक्षित आत्मा संसार के सभी दुःखों से मुक्त हो जाता है।

दशवैकालिक दूसरी चूलिका गाथा १६

सोइंदिय निग्गहेणं भंते! जीवे किं जणेइ? सोइंदिय निग्गहेणं मणुन्नामणुन्नेसु सद्देसु रागदोसनिग्गहं जणयइ। तप्पच्चइयं च कम्मं न बंधइ पुव्वबद्धं च निज्जरेइ॥५॥

भावार्थ- हे भगवन्! श्रोत्र इन्द्रिय का निग्रह करने से जीव को क्या फल प्राप्त होता है? हे गौतम! श्रोत्रेन्द्रिय का निग्रह करने से आत्मा मनोज्ञ शब्दों में राग नहीं करता और अमनोज्ञ शब्दों में द्वेष नहीं करता। इस प्रकार वह राग द्वेष के कारण नये कर्म

भावार्थ-केशीमुनि- हे गौतम ! महासाहसी भयङ्कर यह दुष्ट घोड़ा बड़ी तेज़ी से दौड़ रहा है। उस पर सवार हुए तुम उन्मार्ग की ओर क्यों नहीं ले जाये जाते?

पहावंतं निगिण्हामि, सुय रस्सी समाहियं।
न मे गच्छइ उम्मग्गं, मग्गं च पडिवज्जइ ॥ ६ ॥

भावार्थ- केशी मुनि को गौतम स्वामी का उत्तर- हे मुने ! उन्मार्ग की ओर जाते हुए उस घोड़े को मैं शास्त्ररूपी लगाम से अपने नियन्त्रण में रखता हूँ। इस कारण वह मुझे उन्मार्ग में नहीं ले जाता किन्तु सन्मार्ग पर ही चलता है।

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावइ।
तं सम्मं तु निगिण्हामि, धम्मसिक्खाइ कंथगं॥१०॥

भावार्थ- यह मन रूप घोड़ा है जो कि बड़ा उद्धत, भयङ्कर और दुष्ट है और उन्मार्ग की ओर दौड़ता रहता है। धर्म शिक्षा द्वारा मैं इसे, जातिवन्त घोड़े की तरह, सम्यक् प्रकार अपने वश रखता हूँ। उत्तराध्ययन तेईसवाँ अ० गाथा ५५,५६,५८

न सक्का न सोउं सद्दा, सोतविसयमागया।
राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥११॥

भावार्थ- यह सम्भव नहीं है कि कर्ण गोचर हुए शब्द सुने न जायँ। किन्तु भिक्षु को चाहिये कि वह उन पर रागद्वेष न लावे।

नो सक्का रूवमदट्ठुं, चक्खु विसयमागयं।
राग दोसा उ जे तत्थ, ते भिक्खू परिवज्जए ॥१२॥

भावार्थ- चक्षु के सामने आया हुआ रूप न देखा जाय यह

दायी होते हैं किन्तु वीतराग पुरुष को ये विषय कभी थोड़ा म
भी दुःख नहीं देते। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा १००

२६— रसना (जीभ) का संयम

रसा पगामं न निसेवियव्वा,पायं रसा दित्तिकरा नराण
दित्तं च कामा समभिद्दवन्ति,दुमं जहा साउफलं व पक्ख

भावार्थ-घृत आदि रसों का अधिक मात्रा में सेवन नहीं क
चाहिये क्योंकि प्रायः रस मनुष्यों में काम का उद्दीपन करते
उद्दीप्त मनुष्य की ओर कामवासनाएं ठीक वैसे ही दौड़ी आ
हैं, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष की ओर पक्षी दौड़े आते ह
उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा १०

पणीयं भत्तपाणं तु, खिप्पं मयविवड्ढणं ।
बंभचेररओ भिक्खू, निच्चसो परिवज्जए ॥

भावार्थ-पौष्टिक रसीला भोजन विषय वासना को शी
उत्तेजित करता है। अतएव ब्रह्मचारी साधु को इसका सदा
करना चाहिये। उत्तराध्ययन सोलहवां अ० गाथा

जे मायरं च पियरं च हिच्चा,गारं तहा पुत्त पसुं धण
कुलाइं जो धावइ साउगाइं,अहाहु से सामणियस्स

भावार्थ- माता, पिता, पुत्र परिवार, घर, पशु और ध
त्याग कर संयम अङ्गीकार करके भी जो स्वादवश स्वादिष्ट
वाले घरों में भिक्षा के लिये जाता है। वह साधुत्व से बहुत
सूयगडांग सातवां अध्ययन गाथा

से भिक्खू वा भिक्खुणी वा असणं वा आहारे
णो वामाओ हणुयाओ दाहिणं हणुयं संचारेज्जा आसा-

भावार्थ– जैसे पहिये को बराबर गति में रखने के लिये में तैल लगाया जाता है उसी प्रकार शरीर को संयम यात्रा रखने के लिये आहार करना चाहिये। किन्तु न स्वाद के न रूप के लिये, न वर्ण के लिये और न बल के लिये ही करना चाहिये।

प्रश्नव्याकरण प्रथम संवर द्वार

३०– कठोर वचन

मुहुत्तदुक्खा उ हवन्ति कंटया,
अओमया ते वि तओ सुउद्धरा।
वाया दुरुत्ताणि दुरुद्धराणि,
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि ॥ १ ॥

भावार्थ–लोहे के तीखे काँटे थोड़े समय तक ही दुःख और वे सहज ही शरीर में से निकाले जा सकते हैं। किन्तु में चुभे हुए कठोर वचनों का निकालना सहज नहीं है। बँधता है और ये महा भयावह सिद्ध होते हैं।

दशवैकालिक नवाँ अध्ययन तीसरा उद्देशा गाथा

अहिगरणकडस्स भिक्खुणो, वयमाणस्स पसज्झ दारुणं।
अट्ठे परिहायति बहू, अहिगरणं न करेज्ज पंडिए

भावार्थ–जो साधु कलह करता है, दूसरों को भयभीत वाले दारुण वचन बोलता है। उसके संयम की बहुत हानि है। अतएव पंडित मुनि को चाहिये कि वह कलह न करे।

सूत्रकृतांग दूसरा अध्ययन दूसरा उ० गाथा १९

अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो।
सव्वसो तं न भासिज्जा, भासं अहियगामिणिं ॥

भावार्थ– जिस भाषा को सुन कर दूसरों को अप्रीति

हो, जिससे श्रोता शीघ्र ही कुपित हो, इहलोक और परलोक में आत्मा का अहित करने वाली ऐसी भाषा साधक को कभी न बोलनी चाहिये। दशवैकालिक अध्य० ८ गाथा ४८

तहेव काणं काणत्ति, पंडगं पंडगत्ति वा।
वाहियं वावि रोगित्ति, तेणं चोरत्ति नो वए ॥ ४ ॥

भावार्थ- काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर कहना यद्यपि सत्य है, फिर भी ऐसा नहीं कहना चाहिये। (क्योंकि इससे उन व्यक्तियों को दुःख पहुँचता है।)
दशवैकालिक सातवां अध्ययन गाथा १२

तहेव फरुसा भासा, गुरु भूओवघाइणी।
सच्चा वि सा न वत्तव्वा, जओ पावस्स आगमो ॥५॥

भावार्थ-जो भाषा कठोर हो, दूसरों को दुःख पहुँचाने वाली हो वह, चाहे सत्य भी क्यों न हो, नहीं बोलनी चाहिये क्योंकि इससे पाप का आगमन होता है। दशवैकालिक सातवां अ० गाथा ११

अपुच्छिओ न भासिज्जा, भासमाणस्स अंतरा।
पिट्ठिमंसं न खाइज्जा, मायामोसं विवज्जए ॥ ६ ॥

भावार्थ-साधु को बिना पूछे न बोलना चाहिये। गुरु महाराज कुछ कह रहे हों तो उनके बीच भी न बोलना चाहिये। उसे किसी की पीठ पीछे बुराई न करनी चाहिये और न माया प्रधान असत्य वचन ही कहना चाहिये। दशवैकालिक आठवां अ० गाथा ४७

दिट्ठं मिअं असंदिद्धं, पडिपुन्नं वियं जियं।
अयंपिर मणुव्विग्गं, भासं निसिर अत्तवं ॥ ७ ॥
भावार्थ-आत्मार्थी साधक को दृष्ट (अनुभूत वस्तु विषयक),

संदेह रहित, परिपूर्ण, स्पष्ट, वाचालता रहित और किसी को भी उद्विग्न न करने वाली वाणी बोलनी चाहिये।

दशवैकालिक सातवां अध्ययन गाथा ५६

सवक्कसुद्धिं समुपेहिया मुणी,
गिरं च दुट्ठं परिवज्जए सया।
मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए,
सयाण मज्झे लहइ पसंसणं ॥ ८ ॥

भावार्थ–साधु को सदा वचन शुद्धि का ख्याल रखना चाहि और दूषित वाणी कभी न कहनी चाहिये। सोच विचार कर निर्दो परिमित भाषा बोलने वाला साधु सत्पुरुषों में प्रशंसा पाता है

भासाइ दोसे अ गुणे अ जाणिया,
तीसे अ दुट्ठे परिवज्जए सया।
छसु संजए सामणिए सया जए,
वइज्ज बुद्धे हिअमाणुलोमियं ॥ ६ ॥

भावार्थ–भाषा के गुण तथा दोषों को जान कर दूषित भा का सदा के लिये त्याग करने वाला, षट्काय जीवों की र करने वाला और चारित्र पालन में सदा तत्पर बुद्धिमान स एक मात्र हितकारी और मधुर-मीठी भाषा बोले।

दशवैकालिक सातवां अध्ययन गाथा ५५,५६

३१— कर्मों की सफलता

सच्चं सुचिण्णं सफलं नराणं,
कडाण कम्माण न मुक्ख अत्थि ॥ १ ॥

सी प्रकार भुक्त भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।
उत्तराध्ययन उन्नीसवां अ० गाथा १७

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुंजमाणा।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे ५।

भावार्थ-जैसे किंपाक फल रूप रंग और रस की दृष्टि से शुरू में खाते समय बड़े मनोहर मालूम होते हैं किन्तु पचने पर वे इस जीवन ही का नाश कर देते हैं। इसी प्रकार कामभोग भी बड़े आकर्षक और सुखद प्रतीत होते हैं पर विपाक काल में वे सर्वनाश कर देते हैं। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा २०

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा ।
संसार मुक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥ ६ ॥

भावार्थ-कामभोग क्षणमात्र सुख देने वाले हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। उनमें सुख बहुत थोड़ा है पर अतिशय दुःख ही दुःख है। ये कामभोग मोक्ष सुख के परम शत्रु हैं एवं अनर्थों की खान हैं। उत्तराध्ययन चौदहवां अ० गाथा १३

कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं, कामकामी खलु अयं पुरिसे से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ॥

भावार्थ- इच्छा और भोग रूप कामों का नाश करना अति कठिन है। यह जीवन भी नहीं बढ़ाया जा सकता। (अतएव कभी प्रमाद न करना चाहिये।) कामभोगों की कामना करने वाला आत्मा उनके प्राप्त न होने पर या उनका वियोग होने पर शोक करता है, खिन्न होता है, मर्यादा भंग करता है, पीड़ित होता है एवं परिताप करता है। आचारांग सूत्र अ० पाँचवां उ० सूत्र ३२

भावार्थ– द्विपद, चतुष्पद, क्षेत्र, घर, धन, धान्य– इन सभी को यहीं छोड़ कर परवश हो यह आत्मा अपने कर्मों के साथ परलोक में जाता है और वहाँ अपने कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा भव प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन तेरहवां अध्ययन गाथा २१-२४

३२— कामभोगों की असारता

जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ॥ १ ॥

भावार्थ–जो शब्दादि विषय हैं वही संसार है और जो संसार है वही शब्दादि विषय है। आचारांग पहला श्रु० पाँचवां उ० सूत्र ४१

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ २॥

भावार्थ– सभी संगीत विलाप रूप है, सभी नृत्य या नाटक विडम्पना रूप हैं, सभी आभूषण भार रूप हैं एवं सभी शब्दादि काम दुःख देने वाले हैं। उत्तराध्ययन तेरहवां अध्ययन गाथा १६

सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो, कत्थवि केलीइ नत्थि जह सारो।
इंदिय विसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठुवि गविट्ठं ॥३॥

भावार्थ– जैसे कदली (केले) में खूब गवेषणा करने पर भी कहीं सार नहीं मिलता इसी प्रकार इन्द्रिय विषयों में भी, तत्त्वज्ञों ने खूब खोज करके भी कहीं सुख नहीं देखा है।

मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १४४

जह किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥ ४ ॥

भावार्थ– जैसे किंपाक फलों का परिणाम सुन्दर नहीं होता

इसी प्रकार इन भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।

उत्तराध्ययन उन्नीसवां अ० गाथा १७

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुंजमाणा।
ते खुद्दए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे ५।

भावार्थ–जैसे किंपाक फल रूप रंग और रस की दृष्टि से शुरू में खाते समय बड़े मनोहर मालूम होते हैं किन्तु पचने पर वे इस जीवन ही का नाश कर देते हैं। इसी प्रकार कामभोग भी बड़े आकर्षक और सुखद प्रतीत होते हैं पर विपाक काल में वे सर्वनाश कर देते हैं। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा २०

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा।
संसार मुक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥ ६॥

भावार्थ–कामभोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। उनमें सुख बहुत थोड़ा है पर अतिशय दुःख ही दुःख है। ये कामभोग मोक्ष सुख के परम शत्रु हैं एवं अनर्थों की खान हैं। उत्तराध्ययन चौदहवां अ० गाथा १३

कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं, कामकामी खलु अयं पुरिसे से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ॥

भावार्थ– इच्छा और भोग रूप कामों का नाश करना अति कठिन है। यह जीवन भी नहीं बढ़ाया जा सकता। (अतएव कभी प्रमाद न करना चाहिये।) कामभोगों की कामना करने वाला आत्मा उनके प्राप्त न होने पर या उनका वियोग होने पर शोक करता है, खिन्न होता है, मर्यादा भंग करता है, पीड़ित होता है एवं परिताप करता है। आचारांग दूसरा अ० पाँचवां उ० सूत्र ९१

भावार्थ- द्विपद, चतुष्पद, क्षेत्र, घर, धन, धान्य- इन सभी को यहीं छोड़ कर परवश हो यह आत्मा अपने कर्मों के साथ परलोक में जाता है और वहाँ अपने कर्मों के अनुसार अच्छा या बुरा भव प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन तेरहवां अध्ययन गाथा २१-२४

३२— कामभोगों की असारता

जे गुणे से आवट्टे, जे आवट्टे से गुणे ॥ १ ॥

भावार्थ-जो शब्दादि विषय हैं वही संसार है और जो संसार है वही शब्दादि विषय है। आचारांग पहला श्रु० पाँचवां उ० सूत्र ४१

सव्वं विलविअं गीअं, सव्वं नट्टं विडम्बिअं ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥ २॥

भावार्थ- सभी संगीत विलाप रूप है, सभी नृत्य या नाटक विडम्बना रूप हैं, सभी आभूषण भार रूप हैं एवं सभी शब्दादि काम दुःख देने वाले हैं। उत्तराध्ययन तेरहवां अध्ययन गाथा १६

सुट्ठुवि मग्गिज्जंतो, कत्थवि केलीइ नत्थि जह सारो ।
इंदिय विसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ॥३॥

भावार्थ- जैसे कदली (केले) में खूब गवेषणा करने पर भी कहीं सार नहीं मिलता इसी प्रकार इन्द्रिय विषयों में भी, तत्त्वज्ञ ने खूब खोज करके भी कहीं सुख नहीं देखा है।

मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १४४

जह किंपागफलाणं, परिणामो न सुन्दरो ।
एवं भुत्ताण भोगाणं, परिणामो न सुन्दरो ॥ ४ ॥

भावार्थ- जैसे किंपाक फलों का परिणाम सुन्दर नहीं होता

इसी प्रकार भुक्त भोगों का परिणाम भी सुन्दर नहीं होता।

उत्तराध्ययन उन्नीसवां अ० गाथा १७

जहा य किंपागफला मणोरमा, रसेण वण्णेण य भुंजमाणा।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा, एओवमा कामगुणा विवागे ५।

भावार्थ–जैसे किंपाक फल रूप रंग और रस की दृष्टि से शुरू में खाते समय बड़े मनोहर मालूम होते हैं किन्तु पचने पर वे इस जीवन ही का नाश कर देते हैं। इसी प्रकार कामभोग भी बड़े आकर्षक और सुखद प्रतीत होते हैं पर विपाक काल में वे सर्वनाश कर देते हैं। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा २०

खणमित्त सुक्खा बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अनिगाम सुक्खा।
संसार मुक्खस्स विपक्खभूया,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा॥ ६॥

भावार्थ–कामभोग क्षण मात्र सुख देने वाले हैं और चिरकाल तक दुःख देने वाले हैं। उनमें सुख बहुत थोड़ा है पर अतिशय दुःख ही दुःख है। ये कामभोग मोक्ष सुख के परम शत्रु हैं एवं अनर्थों की खान हैं। उत्तराध्ययन चौदहवां अ० गाथा १३

कामा दुरतिक्कमा, जीवियं दुप्पडिवूहगं, कामकामी खलु अयं पुरिसे से सोयइ जूरइ तिप्पइ पिड्डइ परितप्पइ॥

भावार्थ–इच्छा और भोग रूप कामों का नाश करना अति कठिन है। यह जीवन भी नहीं बढ़ाया जा सकता। (अतएव कभी प्रमाद न करना चाहिये।) कामभोगों की कामना करने वाला आत्मा उनके प्राप्त न होने पर या उनका वियोग होने पर शोक करता है, खिन्न होता है, मर्यादा भंग करता है, पीड़ित होता है एवं परिताप करता है। आचारांग सूत्र अ० दूसरा उ० पांच २२

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पइ ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ ॥ १२ ॥

भावार्थ- शब्दादि भोग भोगने पर आत्मा कर्म मल से लिप्त होता है और अभोगी लिप्त नहीं होता। भोगी संसार में परिभ्रमण करता है और अभोगी संसार बन्धन से मुक्त हो जाता है।

उत्तराध्ययन पच्चीसवां अध्ययन गाथा ३९

विसं तु पीयं जह कालकूडं, हणाइ सत्थं जह कुग्गहीयं।
एसो य धम्मो विसओववन्नो, हणाइ वेयाल इवाविवन्नो॥

भावार्थ-जैसे कालकूट विष पीने वाले को, उल्टा पकड़ा हुआ शस्त्र शस्त्रधारी को एवं मंत्रादि से वश नहीं किया हुआ वेताल साधक को मार डालता है। इसी प्रकार शब्दादि विषय वाला यतिधर्म भी वेशधारी द्रव्य साधु को दुर्गति में ले जाता है।

उत्तराध्ययन बीसवां अध्ययन गाथा ४४

तण कट्ठेहि य अग्गी, लवण जलो वा नईसहस्सेहिं।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेहिं ॥ १४ ॥

भावार्थ-जैसे तृण काष्ठों से अग्नि तृप्त नहीं होती, हजारों नदियों से भी लवण समुद्र को संतोष नहीं होता। इसी प्रकार कामभोगों से भी इस जीव की तृप्ति नहीं हो सकती।

आतुरप्रत्याख्यान प्रकीर्णक गाथा ५०

जस्सिमे सद्दा य, रूवा य, गंधा य, रसा य, फासा य अहिसमन्नागया भवंति से आयवी, णाणवी, वेयवी, धम्मवी, बंभवी ॥१५॥

भावार्थ-जो आत्मा मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्शों में राग द्वेष नहीं करता, वही आत्मा, ज्ञान, वेद (आचा-

थावरं जंगमं चेव, धणं धन्नं उवक्खरं ।
पच्चमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयण ॥ ३ ॥

भावार्थ– स्थावर जंगम सम्पत्ति, धान्य एवं घर गृहस्थी का अन्य सामान ये सभी कर्मों से पीड़ित हुए मनुष्य को दुःख से नहीं छुड़ा सकते। उत्त० छट्ठा अ० गाथा ६

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा ।
तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा ॥ ४ ॥

भावार्थ– स्वजन सम्बन्धी लोग आपत्ति आने पर तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, न तुम्हें शरण ही दे सकते हैं। तुम भी उनके त्राण एवं शरण के लिये समर्थ नहीं हो। आचारांग अ० २ उ० १ सूत्र६७

अप्पणा वि अणाहो ऽसि, सेणिया मगहाहिया ।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं नाहो भविस्ससि ॥ ५ ॥

भावार्थ – मगधदेश के अधिपति हे श्रेणिक ! तुम तो स्वयं ही अनाथ हो। जो स्वयं अनाथ है वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है?
उत्तराध्ययन बीसवां अध्ययन गाथा १२

नोट—इसी ग्रन्थ के पाँचवें भाग में बोल नं० ८५४ में अनाथता का विशेष स्पष्टीकरण दिया गया है।

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा ।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ६ ॥

भावार्थ– अपने कर्मों का फल भोगते हुए तुम्हें माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू तथा अन्य सम्बन्धीजन–ये कोई भी दुःख से बचाने में समर्थ नहीं है। सूयगडांग नवां अ० गाथा ५

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति ।७।

थावरं जंगमं चेव, धणं धन्नं उवक्खरं।
पचमाणस्स कम्मेहिं, नालं दुक्खाउ मोयण ॥ ३ ॥

भावार्थ– स्थावर जंगम सम्पत्ति, धान्य एवं घर गृहस्थी का अन्य सामान ये सभी कर्मों से पीड़ित हुए मनुष्य को दुःख से नहीं छुड़ा सकते। उत्त० अध्ययन छठा गाथा ६

नालं ते तव ताणाए वा सरणाए वा।
तुमंपि तेसिं नालं ताणाए वा सरणाए वा ॥ ४ ॥

भावार्थ– स्वजन सम्बन्धी लोग आपत्ति आने पर तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकते, न तुम्हें शरण ही दे सकते हैं। तुम भी उनके त्राण एवं शरण के लिये समर्थ नहीं हो। आचारांग अ० २ उ० १ सूत्र ६७

अप्पणा वि अणाहो ऽसि, सेणिया मगहाहिवा।
अप्पणा अणाहो संतो, कहं नाहो भविस्ससि ॥ ५ ॥

भावार्थ– मगधदेश के अधिपति हे श्रेणिक! तुम तो स्वयं ही अनाथ हो। जो स्वयं अनाथ है वह दूसरों का नाथ कैसे हो सकता है? उत्तराध्ययन बीसवां अध्ययन गाथा १२

नोट—इसी ग्रन्थ के पाँचवें भाग में बोल नं० ८५४ में अनाथता का विशेष स्पष्टीकरण दिया गया है।

माया पिया ण्हुसा भाया, भज्जा पुत्ता य ओरसा।
नालं ते मम ताणाय, लुप्पंतस्स सकम्मुणा ॥ ६ ॥

भावार्थ– अपने कर्मों का फल भोगते हुए तुम्हें माता, पिता, भाई, स्त्री, पुत्र, पुत्रवधू तथा अन्य सम्बन्धीजन–ये कोई भी दुःख से बचाने में समर्थ नहीं है। सूयगडांग नवां अ० गाथा ५

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं।
कम्मस्स ते तस्स उ वेयकाले, न बंधवा बंधवयं उवेंति ॥७॥

२४— जीवन की अस्थिरता

दुमपत्तए पंडुयए जहा, निवडइ राइगणाण अच्चए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥१॥

भावार्थ – जैसे वृक्ष का पीला पत्ता कुछ दिन निकाल कर वृन्त से शिथिल हो गिर पड़ता है। मानव जीवन भी पत्र जैसा ही है। आयु और यौवन अस्थिर हैं। अतएव, हे गौतम! क्षण भर भी प्रमाद न करो।

उत्तराध्ययन दसवां अ० गाथा १

कुसग्गे जह ओसबिंदुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम! मा पमायए ॥२॥

भावार्थ– जैसे कुशा की नोक पर रही हुई ओस की बिन्दु थोड़े समय तक अस्थिर रह कर गिर पड़ती है। मानव जीवन भी ओस बिन्दु की तरह ही अस्थिर एवं विनश्वर (नाशवान्) है। अतएव, हे गौतम! समय मात्र भी प्रमाद न करो।

उत्तराध्ययन दसवां अध्ययन गाथा २

न य संखयमाहु जीवियं, तह वि य बालजणो पगब्भई।
पच्चुप्पन्नेण कारियं, को दट्ठुं परलोगमागए ॥ ३ ॥

भावार्थ– जीवन टूट जाने पर पुनः नहीं जोड़ा जा सकता फिर भी अज्ञानी जीव पापाचरण करते हुए लज्जित नहीं होता। धर्म के लिये प्रेरणा करने पर वह धृष्टतापूर्वक कहता है कि हमें वर्तमान से प्रयोजन है, परलोक को देख कर कौन आया है।

सूत्रकृतांग दूसरा अध्ययन तीसरा उद्देश गाथा १०

भावार्थ– यह जीवन असंस्कृत है। एक बार टूट जाने बाद फिर नहीं जुड़ता। बुढ़ापा आने पर कोई रक्षा करने वाला नहीं होता। यह भी सोच लो कि हिंसा और असंयम में जीवन बिताने वाले प्रमादी पुरुष अन्त समय किस की शरण ग्रहण करेंगे?

उत्तराध्ययन चौथा अध्ययन गाथा १

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसंपायचंचलं।
जत्थ तं मुज्झसी रायं, पेच्चत्थं नावबुज्झसि ॥५॥

भावार्थ- हे राजन! मनुष्य जीवन और रूप सौन्दर्य, जिनमें आसक्त होकर तुम परलोक की उपेक्षा कर रहे हो, बिजली की चमक के समान चंचल हैं। उत्तराध्ययन अठारहवां अ॰ गाथा १३

डहरा वुड्ढा य पासह, गब्भत्थावि चयंति माणवा।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउखयंमि तुट्टई ॥६॥

भावार्थ– यह मानव कभी बाल अवस्था में, कभी वृद्धावस्था में और कभी गर्भस्थ ही प्राण त्याग कर देता है। जैसे श्येन पक्षी बटेर को मार डालता है इसी प्रकार आयुक्षय होने पर मृत्यु भी प्राण हरण कर लेती है। सुयगडांग दूसरा अ॰ पहला उ॰ गाथा २

इह जीवियमेव पासहा, तरुणे वा ससयस्स तुट्टई।
इत्तरवासे य बुज्झह, गिद्ध नरा कामेसु मुच्छिया ॥७॥

भावार्थ–इस संसार में अपना जीवन ही देखो। यह प्रतिक्षण नष्ट हो रहा है। कभी यह तरुण अवस्था में समाप्त हो जाता है और कभी सौ वर्ष की आयु पूरी होने पर। इस प्रकार मानव जीवन को थोड़े काल का निवास समझो। क्षुद्र मनुष्य ही विषय भोग में आसक्त एवं मूर्छित रहते हैं।

सुयगडांग दूसरा अध्ययन तीसरा उद्देश गाथा ८

इमं च मे अत्थि इमं च नत्थि, इमं च मे किच्चमिमं अकिच्चं।
तं एवमेवं लालप्पमाणं, हरा हरंति त्ति कहं पमाओ ?॥८॥

भावार्थ यह मेरा है, यह मेरा नहीं है, यह मुझे करना चाहिये, यह नहीं करना चाहिये, इस प्रकार कहते कहते ही ये दिनरात मनुष्य की आयु पूरी कर देते हैं फिर धर्म में प्रमाद करना कैसे ठीक हो सकता है ?

उत्तराध्ययन चौदहवां अ० गाथा १५

स पुव्वमेवं न लभेज्ज पच्छा,
एसोवमा सासयवाइयाणं।
विसीयई सिढिले आउयम्मि,
कालोवणीए सरीरस्स भेए॥९॥

भावार्थ- इस जीवन का कोई निश्चय नहीं है, कभी भी मृत्यु आ सकती है- इस सत्य को न समझ कर जीवन को शाश्वत समझने वाले लोग कहा करते हैं कि धर्म की आराधना फिर कभी कर लेंगे, अभी क्या जल्दी है। ये लोग न पहले ही धर्म की आराधना कर पाते हैं न पीछे ही। यों कहते कहते ही उनकी आयु पूरी हो जाती है और काल आकर खड़ा हो जाता है तब अन्त समय में केवल पश्चाताप ही उनके हाथ रह जाता है।

उत्तराध्ययन चौथा अध्ययन गाथा ९

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वऽत्थि पलायणं।
जो जाणे न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया॥१०॥

भावार्थ- जिसकी मृत्यु के साथ मैत्री हो, जो मृत्यु से बच कर भाग सकता हो अथवा जो यह निश्चय पूर्वक जानता हो कि मैं नहीं मरूँगा, वही किसी कार्य को कल पर छोड़ सकता है।

उत्तराध्ययन चौदहवां अध्ययन गाथा २७

३५—वैराग्य

धणेण किं धम्मधुराहिगारे, सयणेण वा कामगुणेहिं चे

भावार्थ- जहाँ धर्माचरण का प्रश्न है वहाँ धन से कोई सार नहीं। इसी तरह स्वजन एवं शब्दादि इन्द्रिय विषयों भी उसके साथ कोई मतलब नहीं है।

उत्तराध्ययन चौदहवाँ अध्ययन गाथा

जया सव्वं परिच्चज्ज, गंतव्व मवसस्स ते।
अणिच्चे जीवलोगम्मि, किं रज्जम्मि पसज्जसि

भावार्थ- हे राजन ! यह जीव लोक अनित्य है। तुम्हें परवश हो यह सभी वैभव त्याग कर जब कभी न कभी जाना है तब फिर इस राज्य में क्यों आसक्त हो रहे हो?

उत्तराध्ययन अठारहवाँ अध्ययन गाथा

खित्तं वत्थुं हिरण्णं च, पुत्तदारं च बंधवा
चइत्ताण इमं देहं, गंतव्व मवसस्स मे॥

भावार्थ-क्षेत्र, वास्तु (घर), सोना, चाँदी, पुत्र, स्त्री और जन इन सभी को, तथा इस शरीर को भी यहीं छोड़ कर न कभी कर्मवश मुझे अवश्य जाना ही होगा।

उत्ताध्ययन उन्नीसवा अध्ययन गाथा

इमं सरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं
असासयावासमिणं, दुक्ख केसाण भायणं

भावार्थ- यह शरीर अनित्य है, अशुचि है, अशुचि से उत्पन्न हुआ है और अशुचि ही उत्पन्न करता है। यह दुःख क्लेश का भाजन है। जीव का यह अशाश्वत आवास है, इसे कब छोड़ना पड़े?

असासए सरीरम्मि, रइं नोपलभामहं ।
पच्छा पुरा य चइयव्वे, फेण बुब्बुय सन्निभे ॥ ५ ॥

भावार्थ- यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षणभंगुर है, पहले या पीछे एक दिन इसे छोड़ना ही पड़ता है। यही कारण है कि विविध भोग सामग्री के सुलभ होने हुए भी इस अशाश्वत देह में मैं ज़रा भी सुख अनुभव नहीं करता।

माणुस्सत्ते असारंमि, वाहिरोगाण आलए ।
जरामरण घत्थम्मि, खणं पि न रमामि हं ॥ ६ ॥

भावार्थ-यह मानव शरीर असार है, व्याधि और रोगों का घर है तथा जरा और मरण से पीड़ित है। इसमें मैं क्षणभर भी आनन्द नहीं पाता। उत्तराध्ययन उन्नीसवां अ० गाथा १२, १३, १४

नीहरंति मयं पुत्ता, पियरं परमदुक्खिया ।
पियरोवि तहा पुत्ते, बंधू रायं ! तवं चरे ॥ ७ ॥

भावार्थ- पिता के वियोग से अत्यन्त दुःखित हुए भी पुत्र मृत पिता को घर से बाहर निकाल देते हैं और इसी प्रकार पिता भी मृत पुत्रों को घर से अलग कर देता है। बन्धुजन भी मृत बन्धु के साथ यही व्यवहार करते हैं। इस प्रकार संसार के सम्बन्धों को यथा समझ कर हे राजन् ! तप का आचरण करो।

तओ तेणज्जिए दव्वे, दारे य परिरक्खिए ।
कीलंतऽन्ने नरा रायं, हट्ठ तुट्ठ मलंकिया ॥ ८ ॥

भावार्थ-इसके बाद मृत व्यक्ति द्वारा उपार्जित धन से एवं हर तरह से रक्षा की गई उसकी स्त्रियों के साथ दूसरे लोग हृष्ट, तुष्ट

३६— प्रमाद

समयं गोयम ! मा पमायए ॥ १ ॥

भावार्थ- हे गौतम ! समय मात्र भी प्रमाद न करो ।

उत्तराध्ययन दसवां अध्ययन

मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी भणिया ।
इय पंचविहो एसो, होइ पमाओ य अपमाओ ॥ २ ॥

भावार्थ- मद्य (नशा), विषय, कषाय, निद्रा और विकथा— ये पाँच प्रकार के प्रमाद हैं। इनका अभाव रूप अप्रमाद भी पाँच ही प्रकार का है ।

उत्तराध्ययन चौथा अ० निर्युक्ति गाथा १८०

पमायं कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं ।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पण्डियमेव वा ॥३॥

भावार्थ- तीर्थङ्कर देव ने प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को कर्म का अभाव बतलाया है अर्थात् प्रमादयुक्त प्रवृत्तियाँ कर्म बन्धन कराने वाली हैं और जो प्रवृत्तियाँ प्रमाद से रहित हैं वे कर्म बन्धन नहीं करातीं। प्रमाद के होने और न होने से ही मनुष्य क्रमशः मूर्ख और पण्डित कहलाता है। सूयगडांग अ० ८ गाथा ३

सव्वओ पमत्तस्स भयं, सव्वओ अप्पमत्तस्स नत्थि भयं।

भावार्थ- प्रमादी को चारों ओर से भय ही भय है, अप्रमत्त पुरुष को कहीं से भी भय नहीं है ।

आचारांग तीसरा अध्ययन तीसरा उ० सूत्र १२४

पमत्ते बहिया पास, अप्पमत्तो परिव्वए ॥ ५ ॥

भावार्थ- विषय कषाय आदि प्रमाद का सेवन करने वालों

को धर्म से बाहर समझो। अतएव प्रमाद का त्याग कर धर्माचरण में उद्यम करो। आचारांग पाँचवां अ० दूसरा उ० सूत्र १४१

तं तह दुल्लहलंभं, विज्जुलया चंचलं माणुसत्तं।
लद्धूण जो पमायइ,सो कापुरिसो न सप्पुरिसो॥६॥

भावार्थ–अति दुर्लभ एवं बिजली के समान चंचल इस मनुष्य भव को पाकर जो प्रमाद करता है वह कापुरुष (कायर) है, सत्पुरुष नहीं। आवश्यक मलयगिरि पहला अ०

जे पमत्ते गुणट्ठिए, से हु दण्डे पवुच्चइ। तं परिण्णाय मेहावी इयाणिं णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं ॥७॥

भावार्थ– जो मद्यादि प्रमाद का आचरण करता है, शब्दादि गुणों को चाहता है वह हिंसक कहा जाता है। यह जान कर बुद्धिमान साधु यह निश्चय करे कि प्रमाद वश मैंने जो पहले किया था वह अब मैं नहीं करूँगा। आचारांग पहला अ० चौथा उ० सूत्र ३४-३५

अंतरं च खलु इमं संपेहाए, धीरो मुहुत्तमवि णो पमायए। वओ अच्चेइ जोव्वणं च ॥ ८ ॥

भावार्थ–मानव भव, आर्यकुल आदि की प्राप्ति–यही धर्म साधन के लिये उपयुक्त अवसर है। यह जान कर धीर पुरुष मुहूर्त मात्र भी प्रमाद न करे। यह वय (अवस्था) और यौवन बीते जा रहे हैं। आचारांग दूसरा अध्ययन पहला उ० सूत्र ६६

सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति ॥ ९ ॥

भावार्थ– जो लोग सोये हुए हैं वे अमुनि हैं और जो मुनि हैं वे सदा जागते रहते हैं। आचारांग तीसरा अ० पहला उ० सूत्र १०६

सुत्तेसु यावि पडिबुद्धजीवी, न वीससे पंडिए आसुपन्ने।
घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं, भारंडपक्खी व चरऽप्पमत्तो ॥

भावार्थ- आशुप्रज्ञ पंडित पुरुष को, मोह निद्रा में सोये हुए प्राणियों के बीच रह कर भी सदा जागरूक रहना चाहिये। प्रमादाचरण पर उसे कभी विश्वास न करना चाहिये। काल निर्दय है और शरीर निर्बल है- यह जान कर उसे भारंड पक्षी की तरह सदा अप्रमत्त होकर विचरना चाहिये. उत्तराध्ययन अ० ४ गाथा ६

३७— राग द्वेष.

रागो य दोसो वि य कम्मबीयं, कम्मं च मोहप्पभवं वदन्ति।
कम्मं च जाइमरणस्स मूलं, दुक्खं च जाइमरणं वयन्ति॥

भावार्थ-राग और द्वेष कर्म के मूल कारण हैं और कर्म मोह से उत्पन्न होता है। कर्म जन्म मृत्यु का मूल हेतु है और जन्म मृत्यु को ही दुःख कहा जाता है। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अ० गाथा ७

दवग्गिणा जहा रण्णे, डज्झमाणेसु जंतुसु ।
अन्ने सत्ता पमोयंति, रागदोस वसं गया ॥ २ ॥
एवमेव वयं मूढा, कामभोगेसु मुच्छिया ।
डज्झमाणं न बुज्झामो, रागदोसग्गिणा जगं ॥ ३ ॥

भावार्थ- जैसे जंगल में दावाग्नि से प्राणियों के जलने पर दूसरे प्राणी राग द्वेष के वश होकर प्रसन्न होते हैं। (वे बेचारे यह नहीं जानते कि बढ़ती हुई यह दावाग्नि हमें भी भस्म कर देगी और इसलिये हमें इससे बचने का प्रयत्न करना चाहिये।)

इसी प्रकार काम भोगों में मूर्छित हम अज्ञानी लोग भी यह नहीं

समझते कि विश्व राग द्वेष रूप अग्नि से जल रहा है और हमें
अग्नि से बचने का प्रयत्न करना चाहिये ।

उत्तराध्ययन चौदहवाँ अध्ययन गाथा ४२,४३

न वि तं कुणई अमित्तो, सुट्ठु वि य विराहिओ समत्थो।
जं दो वि अणिग्गहीया, करंति रागो य दोसो य ॥३

भावार्थ-समर्थ शत्रु का भी कितना ही विरोध क्यों न किया ज
फिर भी वह आत्मा का उतना अहित नहीं करता जितना कि व
नहीं किये हुए रागद्वेष करते हैं। मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १६

न कामभोगा समयं उविंति, न यावि भोगा विगइं उविं
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सोतेसु मोहा विगइं उवे

भावार्थ-कामभोग अपने आप न तो किसी मनुष्य में समभ
पैदा करते हैं और न किसी में विकार भाव ही उत्पन्न करते
किन्तु जो मनुष्य उनसे राग या द्वेष करता है वही मोह के व
हो विकारभाव प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन अ० ३२ गाथा १

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धंतमल पावगं ।
रागदोसभयातीतं, तं वयं बूम माहणं ॥६

भावार्थ-जो कसौटी पर कसे हुए एवं अग्नि में डाल कर शु
किये हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय
रहित है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। उत्तराध्ययन अ० पच्चीसवाँ गाथा

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहूगुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो राग दोसेहिं समो स पुज्जो ॥७॥

भावार्थ-जो गुणों को धारण करता है वह साधु है और जो गुणों से रहित है वह असाधु है। अतएव साधु योग्य गुणों को ग्रहण करो एवं दुर्गुणों का त्याग करो। जो आत्मा द्वारा आत्मस्वरूप का जानने वाला तथा राग और द्वेष में समभाव रखने वाला है वही पूजनीय है। दशवैकालिक नवां अ० तीसरा उ० गाथा ११

राग दोसे य दो पावे, पाव कम्म पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुंभइ निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ८ ॥

भावार्थ-राग और द्वेष ये दोनों पाप, पाप कार्यों में प्रवृत्ति कराने वाले हैं। जो साधु इन दोनों का निरोध करता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता। उत्तराध्ययन इकतीसवां अ० गाथा ३

को दुक्खं पाविज्जा, कस्स य सुक्खेहिं विम्हओ हुज्जा ।
को वा न लभिज्ज मुक्खं, रागद्दोसा जइ न हुज्जा ॥ ९ ॥

भावार्थ-यदि राग द्वेष न हों तो संसार में न कोई दुःखी हो और न कोई सुख पाकर ही विस्मित हो बल्कि सभी मुक्त हो जायें।
मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १६७

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए ।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥ १० ॥

भावार्थ- सत्य ज्ञान का प्रकाश करने, अज्ञान और मोह का त्याग करने तथा राग और द्वेष का क्षय करने से आत्मा एकान्त सुखमय मोक्ष प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन अ० ३२ गाथा २

समझते कि विश्व राग द्वेष रूप अग्नि से जल रहा है और इस अग्नि से बचने का प्रयत्न करना चाहिये ।

उत्तराध्ययन चौदहवाँ अध्ययन गाथा ४२,४३

न वि तं कुणई अमित्तो,सुट्ठु वि य विराहिओ समत्थो।
जं दो वि अणिग्गहीया, करंति रागो य दोसो य ॥

भावार्थ-समर्थ शत्रु का भी कितना ही विरोध क्यों न किया फिर भी वह आत्मा का उतना अहित नहीं करता जितना कि नहीं किये हुए रागद्वेष करते हैं। मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १

न कामभोगा समयं उविंति,न यावि भोगा विगइं उविं
जे तप्पओसी य परिग्गही य, सो तेसु मोहा विगइं उवेइ॥

भावार्थ-कामभोग अपने आप न तो किसी मनुष्य में समभाव पैदा करते हैं और न किसी में विकार भाव ही उत्पन्न करते हैं। किन्तु जो मनुष्य उनसे राग या द्वेष करता है वही मोह के वश हो विकारभाव प्राप्त करता है। उत्तराध्ययन अ० ३२ गाथा १०१

जायरूवं जहामट्ठं, निद्धंतमल पावगं ।
रागदोसभयातीतं, तं वयं बूम माहणं ॥ ६ ॥

भावार्थ-जो कसौटी पर कसे हुए एवं अग्नि में डाल कर शुद्ध किये हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग, द्वेष तथा भय से रहित है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं। उत्तराध्ययन अ० पच्चीसवाँ गाथा २१

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहूगुण मुंचऽसाहू ।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो राग दोसेहिं समो स पुज्जो ॥ ७ ॥

भावार्थ–जो गुणों को धारण करता है वह साधु है और जो गुणों से रहित है वह असाधु है। अतएव साधु योग्य गुणों का ग्रहण करो एवं दुर्गुणों का त्याग करो। जो आत्मा द्वारा आत्मस्वरूप का जानने वाला तथा राग और द्वेष में समभाव रखने वाला है वही पूजनीय है। दशवैकालिक नवाँ अ० तीसरा उ० गाथा ११

राग दोसे य दो पावे, पाव कम्म पवत्तणे।
जे भिक्खू रूंभई निच्चं, से न अच्छइ मंडले ॥ ८ ॥

भावार्थ राग और द्वेष ये दोनों पाप, पाप कार्यों में प्रवृत्ति कराने वाले हैं। जो साधु इन दोनों का निरोध करता है वह संसार में परिभ्रमण नहीं करता। उत्तराध्ययन ३१वाँ अ० गाथा ३

को दुक्खं पाविज्जा, कस्स व सुक्खेहिं विम्हओ हुज्जा।
को वा न लभिज्ज मुक्खं, रागद्दोसा जइ न हुज्जा ॥ ९ ॥

भावार्थ यदि राग द्वेष न हों तो संसार में न कोई दुःखी हो और न कोई सुख पाकर ही विस्मित हो बल्कि सभी मुक्त हो जावें। [illegible]

नाणस्स सव्वस्स पगासणाए,
अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए।
रागस्स दोसस्स य संखएणं,
एगंतसोक्खं समुवेइ मोक्खं ॥ १० ॥

भावार्थ सत्य ज्ञान का प्रकाश करने, अज्ञान और मोह का त्याग करने तथा राग और द्वेष का क्षय करने से आत्मा एकान्त सुखमय मोक्ष प्राप्त करता है। उत्तरा० ३२ अ० २

३८— कषाय

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचंति मूलाइं पुणब्भवस्स ॥ १ ॥

भावार्थ- वश नहीं किये हुए क्रोध और मान तथा बढ़ते हुए माया और लोभ- ये चारों कुत्सित कषाय पुनर्जन्म रूपी संसारवृक्ष की जड़ों को हरा भरा रखते हैं अर्थात् संसार को बढ़ाते हैं।

कोहं माणं च मायं च, लोभं च पाववड्ढणं ।
वमे चत्तारि दोसे उ, इच्छंतो हियमप्पणो ॥ २ ॥

भावार्थ- जो मनुष्य आत्मा का हित चाहता है उसे चाहिए कि वह पाप बढ़ाने वाले क्रोध, मान, माया और लोभ- इन चार दोषों को सदा के लिये छोड़ दे।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो ॥३॥

भावार्थ-क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है, माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणों का विनाश करता है। दशवैकालिक अध्ययन ८ गाथा ४०, ३७, ३८

अहे वयइ कोहेणं, माणेणं अहमा गई ।
माया गई पडिग्घाओ, लोहाओ दुहओ भयं ॥४॥

भावार्थ-क्रोध से आत्मा नीचे गिरता है, मान से अधम गति

नाश होती है, माया से मद्गुति का नाश होता है और लोभ से इहलोक तथा परलोक में सब नाश होता है [illegible] अ० ८ गाथा ..

जस्स वि अ दुप्पणिहिया, होंति कसाया तवं चरंतस्स ।
सो बाल तवस्सी विय, गयण्हाणपरिस्समं कुणइ ॥५॥

भावार्थ जो तप का आचरण करता है किन्तु कषायों का निरोध नहीं करता वह बालतपस्वी है । गजस्नान की तरह उसका तप कर्मों की निर्जरा का नहीं बल्कि अधिक कर्म बन्ध का कारण होता है। दशवैकालिक आठवां अ० निर्युक्ति गाथा ३००

> जे कोहणे होइ जगट्ठभासी,
> विओसियं जे उ उदीरएज्जा ।
> अंधे व से दंडपहं गहाय,
> अविओसिए धासति पावकम्मी ॥ ६ ॥

भावार्थ- जो पुरुष क्रोधी है, सर्वत्र दोष ही दोष देखता है और शान्त हुए कलह को पुनः छेड़ता है वह पापात्मा सदा अशान्त रहता है एवं छोटे मार्ग में जाते हुए अंधे पुरुष की तरह पद पद पर दुःखी होता है। सूत्रकृतांग तेरहवां अध्ययन गाथा ५

> जे यावि चंडे मइ इड्ढिगारवे,
> पिसुणे नरे साहस हीणपेसणे ।
> अदिट्ठधम्मे विणए अकोविए,
> असंविभागी न हु तस्स मुक्खो ॥७॥

भावार्थ-जो साधु क्रोधी होता है, ऋद्धि, रस और साता गारव की इच्छा करता है, चुगली खाता है, बिना विचारे कार्य करता है, गुरुजनों का आज्ञाकारी नहीं होता, धर्म के यथार्थ स्वरूप का

अज्ञान एवं विनयाचरण में अकुशल होता है तथा प्राप्त आहारादि अपने साथी साधुओं को नहीं देता उसे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं होता
दशवैकालिक नवां अध्ययन दूसरा उद्देशा गाथा २२

तयसं व जहाइ से रयं, इति संखाय मुणी ण मज्जइ।
गोयन्नतरेण माहणे, अह सेयकरी अन्नेसि इंखिणी ॥८

भावार्थ–जैसे सर्प अपनी काँचली छोड़ देता है इसी प्रकार मुनि आत्मा के साथ लगी हुई कर्म रज दूर करता है। कषाय त्याग करने से कर्म रज दूर होती है यह जान कर वह गोत्रादि किसी का मद नहीं करता। दूसरों की निन्दा अकल्याण करने वाली है इसलिये वह उसका भी त्याग करता है।

जे परिभवइ परं जणं, संसारे परिवत्तई महं।
अदु इंखणिया उ पाविया,इति संखाय मुणी न मज्जइ॥६

भावार्थ-जो व्यक्ति दूसरे की अवज्ञा करता है वह चिरकाल तक संसार में परिभ्रमण करता है। पर निन्दा भी आत्मा को नीचे गिराने वाली है। यह जान कर मुनि जाति, कुल, श्रुत,तप आदि किसी का मद नहीं करता। सूयगडांग अ० २ उ० २ गाथा १, २

न बाहिरं परिभवे, अत्ताणं न समुक्कसे।
सुअलाभे न मज्जिज्जा, जच्चा तवस्सि बुद्धिए ॥१०॥

भावार्थ– साधु को चाहिये कि दूसरे का पराभव (अपमान) न करे, अपने को बड़ा न समझे और शास्त्रों का ज्ञान सीखकर अभिमान न करे। इसी प्रकार उसे जाति, तप, बुद्धि आदि का अहंकार भी न करना चाहिये। दशवैकालिक आठवां अ० गाथा ३०

पन्नामयं चेव तयोमयं च, निन्नामए गोयमयं च भिक्खू

आजीवगं चेव चउत्थमाहु, से पण्डिए उत्तमपोग्गले से ॥

भावार्थ- साधु को बुद्धि का मद, तप का मद, गोत्र का मद और चौथा अर्थ का मद न करना चाहिये जो इन मदों का त्याग करता है वही पण्डित है और वही सभी से बड़ा है।

एयाइं मयाइं विगिंच धीरा, न ताणि सेवन्ति सुधीरधम्मा।
ते सव्वगोत्तावगया महेसी, उच्चं अगोत्तं च गइं वयन्ति॥१२॥

भावार्थ-साधक को बुद्धि आदि सभी का मद छोड़ देना चाहिये। ज्ञान, दर्शन और चारित्र सम्पन्न महात्मा इन मदों का सेवन नहीं करते। सभी गोत्रों से रहित होकर वे महर्षि गोत्र रहित उत्तम गति यानी मोक्ष प्राप्त करते हैं। सूत्रकृतांग तेरहवां अ० गाथा १५, १६

जे आवि अप्पं वसुमंति मत्ता,
संखाय वायं अपरिक्ख कुज्जा।
तवेण वाहं सहिउत्ति मत्ता,
अण्णं जणं पस्सति बिंबभूयं ॥१३॥

भावार्थ-परमार्थ की परीक्षा किये बिना ही जो तुच्छप्रकृति अपने आपको संयमवन्त, ज्ञानवन्त एवं तपस्वी मानता है और अभिमानवश दूसरे लोगों को बिम्ब रूप अर्थात् परछाई की तरह नकली समझता है।

एगंतकूडेण उ से पलेइ, ण विज्जती मोणपयंसि गोत्ते।
जे माणणट्ठेण विउक्कसेज्जा, वसुमन्नतरेण अबुज्झमाणे॥

भावार्थ- वह एकान्तरूप से मोहपाश में फँसकर संसार में परिभ्रमण करता है और सर्वज्ञोपदिष्ट मुनिपद का अनुयायी नहीं है। सत्कार सम्मान आदि पाकर जो गर्व करता है तथा संयम

और ज्ञानादि का मद करता है वह सभी शास्त्र पढ़कर भी वस्
सर्वज्ञ के मत को नहीं जानता। सूयगडांग तेरहवां अ० गाथा ८, १

आयारपन्नत्तिधरं, दिट्ठिवायमहिज्जगं ।
वायाविक्खलियं नच्चा, न तं उवहसे मुणी ॥ १५

भावार्थ-आचार प्रज्ञप्ति का जानकार एवं दृष्टिवाद सीखा हु
विद्वान् साधु भी यदि बोलते हुए स्खलित हो जाय अर्थात्
जाय तो मुनि को उसका उपहास (हँसी) न करना चाहिये।
दशवैकालिक आठवां अध्ययन गाथा ५०

नो छायए नो वि य लूसएज्जा,
माणं न सेवेज्ज पगासणं च।
न यावि पन्ने परिहास कुज्जा,
ण यासियावाय वियागरेज्जा ॥ १६ ॥

भावार्थ- व्याख्याता साधु को चाहिये कि वह कैसी भी प
स्थिति में सूत्र और अर्थ न छिपावे और अपसिद्धान्त (अ
सिद्धान्त) का आश्रय लेकर शास्त्र का व्याख्यान न करे।
अपनी विद्वत्ता का अभिमान न होना चाहिये और न वह
आपको जनता में बहुश्रुत या तपस्वी के नाम से प्रकाशित ही क
चाहिये। बुद्धिमान् साधु को किसी की मज़ाक न करनी चाहि
उसे किसी को 'पुत्रवान हो, धनवान हो,' इस प्रकार आ
र्वचन भी न कहना चाहिये। सूयगडांग चौदहवां अ० गाथा १९

जइ वि य णिगणे किसे चरे, जइ वि य भुंजिय मासमन्त
जे इह मायाइ मिज्जई, आगन्ता गब्भाय णंतसो ॥ १

भावार्थ- जो पुरुष मायादि कषायों से युक्त है वह चाहे

रो, शरीर को कृश कर डाले और महीने महीने की तपस्या करे फिर भी उसे अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

पावि बहुस्सुए सिया, धम्मिय माहण भिक्खुए सिया।
अभिणूम कडेहि मुच्छिए, तिव्वं ते कम्मेहिं किच्चई ॥१८॥

भावार्थ- जो लोग मायाप्रधान अनुष्ठानों में आसक्त हैं वे, चाहें बहुश्रुत हों, धार्मिक हों, ब्राह्मण हों या भिक्षुक हों, कर्मों द्वारा अत्यन्त पीड़ित किये जाते हैं।

सूयगडांग दूसरा अध्ययन पहला उद्देश गाथा ६, ७

कुज्जा पसंस णो करे, न य उक्कोस पगास माहणे।
तेसि सुविवेगमाहिए, पणया जेहिं सुजोसियं धुयं ॥१९॥

भावार्थ- साधक को चाहिये कि वह माया, लोभ, अभिमान और क्रोध का त्याग करे। जिन्होंने इन कषायों का त्याग किया है और संयम का सेवन किया है वे ही धर्म के सन्मुख हैं।

सूयगडांग दूसरा अध्ययन दूसरा उ० गाथा २६

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय सील तवो जलं।
सुयधाराभिहया सन्ता, भिन्ना हु न डहन्ति मे॥२०॥

भावार्थ- तीर्थङ्कर देव ने, निरन्तर आत्मा को जलाने वाले कषायों को अग्नि रूप कहा है और इसे शान्त करने के लिये उन्होंने श्रुत, शील और तप रूप जल बतलाया है। इस जल की धारा से शान्त किये हुए ये कषाय मुझे नहीं जला पाते।

उत्तराध्ययन तेईसवां अध्ययन गाथा ५३

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे।
मायं चज्जवभावेणं, लोभं संतोसओ जिणे ॥ २१ ॥

भावार्थ– उपशम द्वारा क्रोध का नाश करे, मृदुता(नम्रता) अभिमान को जीते, सरलता से माया को नष्ट करे एवं सन्तो द्वारा लोभ पर विजय प्राप्त करे। दशवैकालिक अध्ययन ८ गाथा ३९

कोहं च माणं च तहेव मायं, लोभं चउत्थं अज्झत्थ दोसा एयाणि वंता अरहा महेसी, ण कुव्वइ पाव ण कारवेइ

भावार्थ– क्रोध, मान, माया और लोभ–ये चारों अन्तरा को दूषित करने वाले हैं। इनका पूर्ण रूप से त्याग करने वा अर्हन्त महर्षि न स्वयं पाप करते हैं न दूसरों से ही करवाते हैं

सूत्रकृतांग छठा अध्ययन गाथा २६

पलिउंचणं च भयणं च थंडिल्लुस्सयणाणि य।
धूणादाणाइं लोगंसि, तं विज्जं परिजाणिया ॥ २२

भावार्थ– माया, लोभ, क्रोध और मान–ये चारों कर्मबन्ध कारण हैं। ऐसा जान कर विद्वान् मुनि को इनका त्याग कर चाहिये। सूत्रकृतांग नवां अध्ययन गाथा ११

३६—तृष्णा

जहा य अण्डप्पभवा बलागा, अण्डं बलागप्पभवं जहा य।
एमेव मोहाययणं खु तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयन्ति॥

भावार्थ–जैसे बलाका पक्षी अंडे से उत्पन्न होता है और अंडा बलाका पक्षी से उत्पन्न होता है। इसी प्रकार मोह से तृष्णा और तृष्णा से मोह का उत्पन्न होना कहा जाता है।

दुक्खं हयं जस्स न होइ मोहो,
मोहो हओ जस्स न होइ तण्हा।

तण्हा हया जस्स न होइ लोहो,
लोहो हओ जस्स न किंचणाइं ॥ २ ॥

भावार्थ- जिसके मोह नहीं है उसका दुःख नष्ट हो गया। जिसके तृष्णा नहीं है उसके मोह का नाश हो गया। जिसके लोभ नहीं है उसके तृष्णा भी नहीं रही और जिसके पास कुछ नहीं है उसका लोभ भी नष्ट हो गया। उत्तराध्ययन बत्तीसवां अध्ययन गाथा ८

कसिणं पि जो इमं लोगं, पडिपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स।
तेणावि से न संतुस्से, इइ दुप्पूरए इमे आया ॥ ३ ॥

भावार्थ- धन, धान्य, सोना, चाँदी आदि समस्त पदार्थों से परिपूर्ण यह समग्र विश्व भी यदि एक मनुष्य को दे दिया जाय तब भी वह सन्तुष्ट नहीं होगा। इस प्रकार आत्मा की इच्छा का पूर्ण होना बड़ा कठिन है।

जहा लाहो तहा लोहो, लाहा लोहो पवड्ढई।
दोमासकयं कज्जं, कोडीए वि न निट्ठियं ॥ ४ ॥

भावार्थ- ज्यों ज्यों लाभ होता जाता है त्यों त्यों लोभ भी बढ़ता जाता है। लाभ ही लोभ वृद्धि का कारण है। दो मासे सोने से होने वाला कपिल मुनि का कार्य लोभवश करोड़ों से भी पूरा न हो सका। उत्तराध्ययन आठवां अ० गाथा १६, १७

सव्वं जगं जइ तुहं, सव्वं वावि धणं भवे।
सव्वं पि ते अपज्जत्तं, नेव ताणाय तं तव ॥ ५ ॥

भावार्थ-यदि सारा संसार और सभी धन तुम्हारा हो जाय फिर भी वह तुम्हारे लिये अपर्याप्त ही रहेगा और उससे भी तुम्हारी रक्षा न हो सकेगी। उत्तराध्ययन चौदहवां अध्ययन गाथा ३९

सुवण्ण रूप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया।
णरस्स लुद्धस्स ण तेहिं किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ॥६

भावार्थ- कैलाश पर्वत के समान सोने चाँदी के असंख्य पर्वत भी हों तो भी लोभी मनुष्य का मन नहीं भरता। सच आकाश की तरह इच्छा का भी अन्त नहीं है।

पुढवी सालो जवा चेव, हिरण्णं पसुभिस्सह।
पडिपुण्णं नालमेगस्स, इह विज्जा तवं चरे ॥७

भावार्थ- शालि, जव आदि धान्य, सोना, चाँदी आदि तथा पशुओं से परिपूर्ण यह सारी पृथ्वी एक मनुष्य की इच्छा पूरी करने के लिये भी पर्याप्त (पूरी) नहीं है। यह जानकर संयम का आचरण करना चाहिये। उत्तराध्ययन नवा अ॰ गाथा ४८,

४०— शल्य

रागद्दोसाभिहया, ससल्लमरणं मरन्ति जे मूढा
ते दुक्ख सल्ल बहुला, भमंति संसार कांतारे ॥

भावार्थ- राग द्वेष से अभिभूत जो मूढ़ प्राणी शल्य सहित हैं वे विविध दुःख रूप शल्यों से पीड़ित हो संसार रूप अ परिभ्रमण करते हैं। मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा

सुहुमंपि भावसल्लं, अणुद्धरित्ता उ जे कुणइ कालं
लज्जाइ गारवेण य, न हु सो आराहओ भणिओ

भावार्थ - लज्जा अथवा गारव के कारण जो सूक्ष्म भ

शल्य की शुद्धि नहीं करता और शल्य सहित ही काल कर जाता है उसे आराधक नहीं कहा है। मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा ९८

ससल्लो जइ वि कट्ठुग्गं, घोरवीरं तवं चरे ।
दिव्वं वाससहस्सं पि, ततो वी तं तस्स निप्फलं ॥३॥

भावार्थ– शल्य वाला आत्मा चाहे देवता के हजार वर्ष तक भी धीरता पूर्वक घोर उग्र तप का आचरण करे पर शल्य के कारण उसे उसका कोई फल नहीं होता। महानिशीथ १ अ०

तं खलु समणाउसो ! तस्स णिदाणस्स इमेयारूवे पावए फलविवागे भवति जं नो संचाएति केवलिपण्णत्तं धम्मं पडिसुणित्तए ॥ ४ ॥

भावार्थ-हे आयुष्मन् श्रमण ! उस निदान (नियाणे) का यह पाप रूप फल होता है कि आत्मा सर्वज्ञभाषित धर्म भी नहीं सुन सकता। दशाश्रुतस्कंध दसवीं दशा (प्रथम निदान)

हत्थिणपुरम्मि चित्ता, दट्ठूणं नरवइं महिड्ढियं ।
कामभोगेसु गिद्धेणं, नियाण मसुहं कडं ॥ ५ ॥
तस्स मे अपडिकंतस्स, इमं एयारिसं फलं ।
जाणमाणो वि जं धम्मं, कामभोगेसु मुच्छिओ ॥६॥

भावार्थ-हे चित्रमुने ! हस्तिनापुर में महा ऋद्धि सम्पन्न नृपति (सनत्कुमार नामक चौथे चक्रवर्ती) को देख कर, मैंने कामभोग में अत्यन्त आसक्त हो, उस ऋद्धि की प्राप्ति के लिये अशुभ निदान किया था।

उस निदान का मैंने प्रतिक्रमण नहीं किया। उसी का यह फल है कि धर्म का स्वरूप समझते हुए भी मैं कामभोगों में गृद्ध हो रहा हूँ। उत्तराध्ययन तेरहवाँ अध्ययन गाथा २८,२९

अवगणिअ जो मुक्ख सुहं,कुणइ निआणं असारसुह हेउं।
सो कायमणि कएणं, वेरुलियमणिं पणासेइ ॥ ७॥

भावार्थ– जो मोक्ष सुख की अवगणना कर संसार के असार सुखों के लिये निदान करता है वह काच के टुकड़े के लिये वैडूर्य मणि को हाथ से खो बैठता है। भक्तपरिज्ञा प्रकीर्णक गाथा ११८

जं कुणइ भावसल्लं,अणुद्धिय उत्तमट्ठकालम्मि ।
दुल्लह बोहीयत्तं, अणंत संसारियत्तं च ॥ ८ ॥
तो उद्धरंति गारव रहिया, मूलं पुणब्भवलयाणं ।
मिच्छा दंसण सल्लं, माया सल्लं नियाणं च ॥ ९ ॥

भावार्थ–अन्तिम आराधना काल में यदि भावशल्य की शुद्धि न की जाय तो वह शल्य आत्मा का बड़ा ही अहित करता है। इसके फल स्वरूप आत्मा को बोधि (सम्यक्त्व) दुर्लभ हो जाती है एवं उसे अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है।

अतएव आत्मार्थी पुरुष गारव का त्याग कर, भवलता के मूल समान मिथ्यादर्शन,माया एवं निदान रूप शल्य की शुद्धि करते हैं। मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १११, ११२

४१— आलोचना

कयपावोऽवि मणूसो, आलोइय निन्दिउं गुरुसगासे ।
होइ अइरेग लहुओ,ओहरियभरोव्व भारवहो ॥ १ ॥

भावार्थ- जैसे भारवाही भार उतार कर अत्यन्त हल्कापन अनुभव करता है इसी प्रकार पापी मनुष्य भी गुरु के समीप अपने दुष्कृत्यों की आलोचना निन्दा कर पाप से हल्का हो जाता है।

जह बालो जंपंतो, कज्जमकज्जं च उज्जुयं भणइ ।
तं तह आलोएज्जा, मायामय विप्पमुक्को य ॥ २ ॥

भावार्थ–जैसे बालक बोलते हुए सरल भाव से कार्य अकार्य सभी कुछ कह देता है । इसी प्रकार आत्मार्थी पुरुष को भी माया एवं अभिमान का त्याग कर सरलभाव से अपने दोषों की आलोचना करनी चाहिये ।

जह सुकुसलोऽवि विज्जो, अन्नस्स कहेइ अत्तणो वाहिं ।
तं तह आलोयव्वं, सुट्ठुवि ववहारकुसलेणं ॥ ३ ॥

भावार्थ– जैसे बहुत कुशल भी वैद्य अपना रोग दूसरे वैद्य से कहता है । इसी प्रकार प्रायश्चित्त विधि में निपुण व्यक्ति को भी अपने दोषों की आलोचना दूसरे योग्य व्यक्ति के सम्मुख करनी चाहिये ।

जं पुव्वं तं पुव्वं, जहाणुपुव्विं जहक्कमं सव्वं ।
आलोइज्ज सुविहिओ, कमकालविहिं अभिंदंतो ॥ ४ ॥

भावार्थ– श्रेष्ठ आचार वाले पुरुष को क्रम और काल विधि का भेदन न करते हुए लगे हुए दोषों की क्रमशः आलोचना करनी चाहिये । जो दोष पहले लगा हो उसकी आलोचना पहले और उसके बाद के दोषों की आलोचना बाद में इस प्रकार आनुपूर्वी से आलोचना करनी चाहिये ।

लज्जाइ गारवेण य, जे नालोयंति गुरुसगासम्मि ।
धंतं पि सुयसमिद्धा, न हु ते आराहगा हुंति ॥ ५ ॥

भावार्थ– जो लज्जावश अथवा गर्व के कारण गुरु के समीप अपने दोषों की आलोचना नहीं करते, वे श्रुत से अतिशय समृद्ध होते हुए भी आराधक नहीं हैं ।

[illegible] १०१, १०२, १०३ १०४ १०५

भिक्खू य अण्णयरं अकिच्चठाणं पडिसेवित्ता से णं तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालं करेइ । णत्थि तस्स आराहणा । से णं तस्स ठाणस्स आलोइयपडिक्कंते कालं करेइ । अत्थि तस्स आराहणा ॥ ६ ॥

भावार्थ– साधु यदि किसी अकृत्य का सेवन कर उसकी आलोचना प्रतिक्रमण किये विना काल करे तो उसके आराधना नहीं होती। यदि वह उस अकृत्य की आलोचना प्रतिक्रमण करके काल करे तो उसके आराधना होती है।

भगवती दसवां शतक दूसरा उद्देशा

एवं उवट्ठियस्सवि,आलोएउं विसुद्धभावस्स ।
जं किंचि वि विस्सरियं,सहसक्कारेण वा चुक्कं॥७॥
आराहओ तहवि सो, गारवपरिकुंचणामयविहूणो।
जिणदेसियस्स धीरो, सद्दहगो मुत्तिमग्गस्स ॥ ८ ॥

भावार्थ-शुद्धभावपूर्वक आलोचना के लिये उपस्थित हुआ व्यक्ति आलोचना करते हुए यदि स्मरणशक्ति की कमजोरी के कारण अथवा उतावली में किसी दोष की आलोचना करना भूल जाए।
फिर भी माया, मद एवं गारव से रहित वह धैर्यशाली पुरुष आराधक है एवं जिनोपदिष्ट मुक्ति मार्ग का श्रद्धावान् है।

मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा १२१, १२२

४२— आत्म-चिन्तन

जो पुव्वरत्तावरत्तकाले, संपिक्खए अप्पगमप्पएणं।
किं मे कडं किं च मे किच्चसेसं,किं सक्कणिज्जं न समायरामि

भावार्थ-साधक को चाहिये कि वह रात्रि के प्रथम एवं अन्तिम

पहर में स्वयं अपनी आत्मा का निरीक्षण करे और विचारे कि मैंने कौन से कर्तव्य कार्य किये हैं, कौन से कार्य करना अवशेष है और क्या-क्या शक्य अनुष्ठानों का मैं आचरण नहीं कर रहा हूँ।

किं मे परो पासइ किं च अप्पा,
किं वाहं खलियं न विवज्जयामि।
इच्चेव सम्मं अणुपासमाणो,
अणागयं नो पडिबंध कुज्जा॥ २ ॥

भावार्थ– दूसरे लोग मुझ में क्या दोष देख रहे हैं, मुझे अपने आप में क्या दोष दिखाई देते हैं, क्या मैं इन दोषों को नहीं छोड़ रहा हूँ ? इस प्रकार सम्यक् रीति से अपने दोषों को देखने वाला मुनि भविष्य में ऐसा कोई भी कार्य नहीं करता जिससे कि संयम में बाधा पहुँचे।

जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं,
काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरिज्जा,
आइन्नओ खिप्पमिव क्खलीणं॥ ३ ॥

भावार्थ– धीर मुनि जब कभी आत्मा को मन वचन काया सम्बन्धी दुष्ट व्यापारों में लगा हुआ देखे कि उसी समय शीघ्र शास्त्रोक्त विधि से आत्मा को दुष्ट व्यापार से हटाकर संयम व्यापार में लगाना चाहिये। जैसे आकीर्णक जाति का घोड़ा लगाम के नियन्त्रण में रह कर सन्मार्ग में चलता है। इसी प्रकार मुनि भी शास्त्र विधि के अनुसार आत्मा को संयम मार्ग पर लाना चाहिये।

दशवैकालिक द्वितीय चूलिका गाथा १२, १३, १४

भावणा जोग सुद्धप्पा, जले णावा व आहिया।
णावा व तीरसंपन्ना, सव्व दुक्खा तिउट्टइ ॥४॥

भावार्थ- जो आत्मा पवित्र भावनाओं से शुद्ध है वह जल पर रही हुई नौका के समान है। वह आत्मा नौका की तरह संसार रूप समुद्र के तट पर पहुँच कर सभी दुःखों से छूट जाता है।

सूयगडांग पन्द्रहवां अध्ययन गाथा ५

४३— क्षमापना

पुढवी दग अगणिमारुय,एक्केक्के सत्त जोणि लक्खाओ।
वण पत्तेय अणंते,दस चउदस जोणि लक्खाओ ॥ १ ॥
विगलिंदिएसु दो दो, चउरो चउरो य नारय सुरेसुं ।
तिरिएसु होंति चउरो,चउदस लक्खा उ मणुएसु ॥ २ ॥

भावार्थ-पृथ्वी, पानी, अग्नि और वायु-प्रत्येक की सात सात लाख योनि हैं। प्रत्येक वनस्पति की दस लाख और अनन्त काय अर्थात् साधारण वनस्पति काय की चौदह लाख योनि हैं।

द्वीन्द्रिय,त्रीन्द्रिय,चतुरिन्द्रिय- इन तीनों विकलेन्द्रियों में से प्रत्येक की दो दो लाख योनि हैं । नारकी और देवता की तथा तिर्यञ्च पंचेन्द्रिय की चार चार लाख योनि हैं। मनुष्य की चौदह लाख योनि हैं। इस प्रकार कुल चौरासी लाख योनि हैं।

प्रवचनसारोद्धार गाथा ६९८, ६९९

खामेमि सव्वे जीवा,सव्वे जीवा खमंतु मे ।
मित्ती मे सव्व भूएसु, वेरं मज्झ न केणइ ॥ ३ ॥

भावार्थ- उपरोक्त चौरासी लाख योनि के सभी जीवों से मैं क्षमा चाहता हूँ। सभी जीव मुझे क्षमा करें।मेरा सभी प्राणियों

के साथ मैत्री भाव है। किसी के भी साथ मेरा वैरभाव नहीं है

[illegible]

जं जं मणेण बद्धं, जं जं वायाए भासियं पावं
जं जं काएण कयं, मिच्छा मि दुक्कडं तस्स ॥ ४ ॥

भावार्थ- मन, वचन और शरीर से मैंने जो पाप किये हैं व मेरे सब पाप मिथ्या हों।

आयरिय उवज्झाए, सीसे साहम्मिए कुल गणे अ
जे मे केइ कसाया, सव्वे तिविहेण खामेमि ॥ ५ ॥

भावार्थ- आचार्य, उपाध्याय, शिष्य, साधर्मिक, कुल और गण के प्रति मैंने जो क्रोधादि कषायपूर्वक व्यवहार किया है उसके लिये मैं मन वचन और काया से क्षमा चाहता हूँ।

सव्वस्स समणसंघस्स, भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वं खमावइत्ता खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥ ६ ॥

भावार्थ- मैं नतमस्तक हो, हाथ जोड़ कर पूज्य श्रमण संघ से सभी अपराधों के लिये क्षमा चाहता हूँ और उनके अपराध भी मैं क्षमा करता हूँ।

[illegible]

सव्वस्स जीवरासिस्स, भावओ धम्म निहिअ निअचित्तो
सव्वं खमावइत्ता, खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥ ७ ॥

भावार्थ- धर्म में स्थिर बुद्धि होकर मैं सद्भावपूर्वक सब जीवों से अपने अपराधों के लिये क्षमा चाहता हूँ और उनके सब अपराधों को मैं भी सद्भावपूर्वक क्षमा करता हूँ।

[illegible]

रागेण य दोसेण य,अहवा अकयन्नुणा पडिनिवेसेणं ।
जो मे किंचि वि भणिओ,तमहं तिविहेण खामेमि॥७॥

भावार्थ-राग द्वेष,अकृतज्ञता अथवा आग्रहवश मैंने जो कुछ भी कहा है उसके लिये मैं मन वचन काया से सभी से क्षमा चाहता हूँ।

मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा २१४

४४— अन्तिम भावना

जह नाम असी कोसा,अन्नो कोसो असीवि खलु अन्नो ।
इय मे अन्नो जीवो, अन्नो देहुत्ति मन्निज्जा ॥ ८॥

भावार्थ-जैसे म्यान से तलवार और तलवार से म्यान जुदी होती है। इसी प्रकार मेरा यह जीव शरीर से भिन्न और शरीर जीव से भिन्न है। ऐसा सोच कर शरीर से ममत्व दूर करे।

मरणसमाधि प्रकीर्णक गाथा ६११

नाणाविह दुक्खेहि य, समुइन्नेहि उ सम्म सहणिज्जं ।
न य जीवो य अजीवो, कयपुव्वो वेयणाईहिं ॥ २॥

भावार्थ- अनेक प्रकार के दुःख उदय होने पर उन्हें सम्यक् प्रकार धैर्य रख कर सहन करना चाहिये। वेदना आदि से आज तक कभी जीव अजीव नहीं हुआ है।

धीरेणवि मरियव्वं,काउरिसेणवि अवस्स मरियव्वं ।
तम्हा अवस्स मरणे, वरं खु धीरत्तणे मरिउं ॥ ३ ॥

भावार्थ-धीर पुरुष को भी मरना पड़ता है और कायर पुरुष के लिये भी मरना आवश्यक है। जब अवश्य ही मरना है तब धीर की प्रशस्त मौत से मरना ही श्रेष्ठ है।

त्तम हैं, सिद्ध लोकोत्तम हैं, साधु लोकोत्तम हैं और केवली प्ररु पित धर्म लोकोत्तम है।

चार की शरण स्वीकार करता हूँ- अर्हन्तों की शरण स्वीकार करता हूँ, सिद्धों की शरण स्वीकार करता हूँ, साधुओं की शरण स्वीकार करता हूँ और केवली प्ररुपित धर्म की शरण स्वीकार करता हूँ। हरिभद्रीयावश्यक प्रतिक्रमणाध्ययन पृ० ५११

नोट—इस ग्रन्थ में सूत्र की गाथाएं हैं। अतएव पाठकों से निवेदन है कि वे इन्हें बत्तीस अस्वाध्याय टाल कर पढ़ें।

पुस्तक मिलने का पता—

अगरचन्द भैरोंदान सेठिया

जैन ग्रन्थालय

बीकानेर (राजपूताना)